शिक्षा संवाद
2023, 10 (2): 105-143
ISSN: 2348-5558
©2023, संपादक, शिक्षा संवाद, नई दिल्ली

अनुभव

रूस की मेरी यात्रा

केदारनाथ अग्रवाल

गत 11 मई को पालम एयरपोर्ट से लगभग 9.15 बजे, सबेरे मैं अपने अन्य साथियों के साथ एरोफ्लोट से सोवियत संघ की राजधानी मास्को के लिए उड़ा। यह मेरी पहली हवाई-यात्रा थी, इसलिए एक हल्की-सी परेशानी और घबराहट महसूस कर रहा था कि ऐसा न हो कि कोई दुर्घटना हो जाए और मैं फिर अपनी भारत-भूमि को न लौट सकूँ। लेकिन वर्षों की मनोकामना पूरी हो रही थी, इसलिए मेरे अंदर उमंग और उत्साह उछाल ले रहा था और उस उछाल में शंका की एक हल्की-सी छाया झलमला जाती थी। हवाई जहाज़ एक बड़ी लंबी-सी मछली की तरह था, जिसके पेट के भीतर हम और दूसरे यात्री बैठ गए थे। इस पेट में एक तरफ़ तीन आराम कुर्सियों की पंक्तियाँ, आगे-पीछे लंबान में लगी थीं। बीच में एक काफ़ी चौड़ी गैलरी थी, जिसमें लोग आ जा सकते थे और जिसमें यान की परिचारिकाएँ ट्राली में खाने-पीने का सामान रखकर ले आती और वितरण करने के बाद वापस चली जाती थीं। इस गैलरी की दूसरी बग़ल में आराम कुर्सियों की वैसी ही आगे-पीछे, दो-दो की पंक्तियाँ थीं। हम लोगों के बक्से वहाँ पहले ही पहुँचकर एक प्रकोष्ठ में अलग रख दिए गए थे। हम लोगों में से लगभग हरएक के पास अपना-अपना ब्रीफकेस व किसी-किसी के पास एक-एक हैंड बैग भी था, जिसमें सुविधा की कुछ आवश्यक वस्तुएँ थीं। वे सब कुर्सियों के पास ही रख लिए गए थे। यान के अंदर का वातावरण शांत और प्रिय था। न कोई हल्ला था, न कोई हलचल थी, लोग अपनी-अपनी जगह आराम से बैठे थे। यात्रियों में औरतें भी थीं, बच्चे भी थे और पुरुष भी थे। दोनों तरफ़ की कुर्सियों के ऊपर, यान की छत से कुछ नीचे, सामान रखने के लिए टाँड़ें बनी थीं और ठीक कुर्सियों के ऊपर यान की छत में पेंच लगे हुए थे; जिन्हें घुमा देने से सीटों पर ठंडी हवा आने लगती थी और बंद कर देने से रुक जाती थी। हर बग़ल वाली सीट के पास ही दोनों तरफ़ गोलाकार शीशे की पारदर्शी खिड़कियाँ लगी थीं, जिनसे यात्रीगण

बाहर का दृश्य बराबर देखते रह सकते थे। हर खिड़की के पास ही एक हल्के नीले रंग का छोटा पर्दा लगा था, जिसे खिसका देने पर खिड़की का शीशा उसी रंग का हो जाता था और तब बाहर का दृश्य भी उसी के हल्के रंग से रंगा हुआ दिखाई देने लगता था। हरएक कुर्सी में एक-एक बेल्ट लगी हुई थी, जिसे उड़ने से पूर्व और उतरने के पहले, यात्री को अपनी कमर में बाँध लेना पड़ता था। उड़ने से पहले यान-परिचारिका एक ट्रे में लेमन-ड्राप्स और टॉफ़ी लाती थी और हर-एक यात्री को देती थी, जिसे उसे खाना पड़ता था, ताकि उड़ने और उतरने के बीच कोई मानसिक कष्ट न हो या कि मिचली वग़ैरह न आए।

यान उड़ने को हुआ, तो उसका शरीर चालू हुए इंजन की धकधकाहट से हल्का-सा थरथराने लगा और हल्की-सी आवाज़ यान के अंदर पहुँचने लगी और हम सब यात्रियों को वह आवाज़ सुनाई देने लगी; लेकिन वह ऐसी नहीं थी कि उसके सुनते रहने से कोई कष्ट हो या कान सुन्न हो जाएँ। मेरे साथ के किसी यात्री ने आवाज़ से बचने के लिए कान में न तो अपनी उँगली लगाई, न रुई की कोई ठेपी। यान जहाँ खड़ा था, वहीं वह कुछ देर तक धड़धड़ाता रहा और फिर उसके बाद ज़मीन पर उसके पहिए सरकने लगे और वह बड़ी मछली, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी जैसे हवा के सागर में भीतर घुसने लगी। वहाँ से इस तरह चलकर और थोड़ी दूर आकर वह मछली एक जगह फिर रुक गई और अब अधिक वेग से थरथराने लगी। यान का इंजन वेग से चालू किया गया और वह अपनी पूरी ताक़त से ज़ार पकड़ रहा था। कुछ मिनटों के बाद यान वहाँ से आगे चला और अब उसकी गति तेज़-से-तेज़ होती गई। कुछ दूर जाकर उसके पहिये ज़मीन से ऊपर उठे और वह, गन्तव्य मार्ग की ओर हवा में सरसराता हुआ ऊपर उठता चला गया। मैं खिड़की के पास बैठा अचरज से भरा था। इसलिए बराबर खिड़की के बाहर का दृश्य देखता ही रहा। दिल्ली नीचे दूर होती जा रही थी, बड़ी से छोटी होती जा रही थी और फिर थोड़ी देर में यान के ऊँचाई पा लेने पर ग़ायब भी हो गई।

मुझे अपना गाँव याद आया, अपने पुरजन व परिजन याद आए। मेरा बाँदा मुझे याद आया। लड़कपन में लढ़ी पर की हुई यात्राएँ याद आईं। इक्का, रिक्शा, ताँगा और मोटर की मेरी छोटी-बड़ी यात्राएँ और रेल की लंबी यात्राएँ भी दिमाग़ में कौंध गईं। यह सब शायद इसलिए हुआ, क्योंकि इन्हीं सवारियों से मेरा जीवन जुड़ा हुआ था और अब मैं इन्हें छोड़कर एक बड़े वेगवान वायुयान पर चढ़ा दूर देश की यात्रा पर जा रहा था, जहाँ मेरा कोई स्वजन नहीं था; मेरा कोई मित्र नहीं था और हो सकता है कि जहाँ मैं अकेला महसूस करता। इसके बावजूद भी जब यान बादलों की परत भेदकर उनसे ऊपर उठ गया और धरती का धरातल पूर्णतया

लोप हो गया और यान के दोनों तरफ़ ऊपर और नीचे भी आकाश और हवा ही रह गई, तो मुझे यह दृश्य देखने में आनंद आने लगा।

मैंने देखा लगातार बराबर तरह-तरह की आकृतियों के बादल फैले-बिखरे, बैठे, खड़े इकट्ठा हैं और उनका सिलसिला अनंत और अछोर है। उन बादलों की आकृतियाँ बहुत कुछ कभी-कभी क्या ज़ियादातर ही बूढ़े आदमियों की व जवानों की व औरतों बच्चों की लगती थीं। वे कहीं सभा में बैठे सामूहिक संलाप में संलग्न मिले, तो कहीं लेटे और पसरे, एक-दूसरे से आलिंगित और आलिप्त मिले। कोई पगड़ी बाँधे था, तो कोई शरीर पर लंब चोग़ा पादरियों जैसा पहने था। औरतें, तरह-तरह के केशविन्यास किए हुए, मुलायम, स्निग्ध बादलों के ही खुले और अधखुले वस्त्र पहने थीं। कहीं कहीं तो ऐसा भी लगा कि दूध के समुद्र में आर-पार मलाई जम गई है और कहीं-कहीं ऐसा भी लगा कि धुनी हुई मुलायम रुई के बड़े-बड़े ढेर ज्यामितिक ढंग से, आप-ही-आप इकट्ठा हो गए हैं। मेरे कवि मन को यह सब बहुत भला लगा और मैं बराबर इससे प्रभावित होता रहा। मेरी कल्पना काम करती रही और मैं बादलों के देश में निःसंकोच बिहार करता रहा। मैं यह भूल गया कि मैं यान में हूँ और यान से बाहर नहीं हूँ। मैं यह महसूस करता रहा कि मैं उनके पास पहुँच गया हूँ और मैं उन्हीं के देश का सौंदर्य अपनी इन्द्रियों से आत्मसात् कर रहा हूँ। मुझे कालिदास याद आए, निराला और पंत याद आए। शेली भी याद आए, उनकी अमर रचनाएँ याद आईं। लेकिन मुझे ऐसा लगा कि जैसे इन कवियों ने भी ऐसे दृश्य नहीं देखे जैसे दृश्य मैंने देखे हैं। मुझे आजतक कोई ऐसी कविता नहीं मिली, जिसमें कवि स्वयं बादलों के परिवार का सदस्य होकर उन्हीं के बीच जी रहा हो। मेरी अनुभूतियाँ नितान्त भिन्न थीं। मैं बादलों का कुटुंबी हो गया था, बादलों की हर एक भंगिमा को देख रहा था और वह क्या कर रहे हैं या कि उनका मनोजगत् कैसा है, यह सब जान रहा था और इस सबसे मुझे बड़ा आत्मसन्तोष और सुख मिल रहा था। ऐसी थी यह बादलों के साथ जी रही मेरी ज़िंदगी कि मैं कविता लिखना भूल ही गया और अब यह इच्छा हुई कि मैं बादलों की कविता लिखूँ।

यान को कहीं रुकना नहीं था। सीधे मास्को पहुँचना था। बीच-बीच में, कभी कहीं, नीचे होकर जब वह उड़ता था, तब ज़मीन दिखाई दे जाती थी और कई बार तो ऐसा लगा कि ज़मीन में हरे-हरे खेत बिछे हैं और मकान तो ऐसे दिखे कि जैसे किसी ने ज़मीन पर पटिया रख दी है और नदियाँ पतली, बहुत पतली, नालियों की लकीरों-सी लगीं। रास्ते कमरबंद की

तरह पतले दिखे। मुझे मार्ग में कहीं कोई जानवर या आदमी नीचे चलता हुआ नहीं दिखाई दे सका।

यान में हमें यान परिचारिका ने पहले मिनरल वाटर व शर्बत दिया, जिसे हम लोगों ने बड़े चाव और रुचि से पिया। फिर दोपहर का भोजन, ट्राली में भरकर वह लाई और उसने हरएक को दिया। हम लोगों ने अपने आगे सीट की पीठ में लगी छोटी-छोटी मेज़ों को अपनी तरफ़ खोला और उन्हीं पर अपने भोजन की ट्रे रक्खी। मैं निरामिष भोजी था। इसलिए मैंने माँस नहीं लिया। मुझे खाने में गोल डबल रोटी, ब्राउन ब्रेड के कतरे, मक्खन और पनीर, खीरा और हरी पतली सब्ज़ी का डण्ठल, नमक व मिर्च के छोटे पैकेट्स, शर्बत का छोटा गिलास, मिनरल वाटर की बोतल और पैकेटबंद छुरी-काँटे मिले। मैंने मज़े से खाया और खाते-खाते बाहर के दृश्य भी देखता रहा। मेरी बग़ल में नवभारत टाइम्स के न्यूज एडीटर श्री हरिदत्त शर्मा बैठे थे। वे भी निरामिष भोजी थे। उन्होंने भी यही किया। उनके बग़ल में श्री ग़ुलाम रब्बानी ताबाँ बैठे थे। वे माँसाहारी थे। उन्होंने अपना भोजन स्वाद से किया। हम लोगों के साथ दिल्ली की कु० शांता गाँधी व मद्रास के श्री चोखलिंगम व केरल के उपन्यासकार शंकर पिल्लई व हिंदी के लेखक और कवि श्री उपेंद्रनाथ अश्क व कलकत्ते के श्री चिन्मोहन सेहानबीस व कु० चारु सक्सेना थीं। उन लोगों ने भी अपनी-अपनी पसंद का अपना-अपना भोजन किया। मैं नहीं जानता कि इन लोगों के मन में क्या हो रहा था।

यान की गति तेज़ थी। दूरी छोटी होती जा रही थी। मास्को नज़दीक आनेवाला था। दोपहर के तीन या साढ़े तीन बजे के लगभग हमारा यान मास्को पर उतरा। अब एयरपोर्ट पर पाँच बजे शाम तक हम लोगों के काग़ज़-पत्तर की जाँच-परख होती रही और मैं अब पिछले दृश्य को भूलकर मास्को के एयरपोर्ट पर सोवियत संघ के बारे में सोचने लगा। मुझे उसका इतिहास याद आया। उसकी अक्टूबर-क्रांति याद आई। मुझे महान लेनिन याद आए और उनकी प्राणलेवा संकट की घड़ियाँ याद आईं, जब वहाँ के निवासी जार के ख़िलाफ़, स्थान-स्थान पर लड़ाई लड़ रहे थे और पुरानी भू-दासता व सामंतवाद को धूलधूसरित करके समाजवाद की स्थापना के लिए प्राण दे रहे थे। मैं अंदर से रोमांचित हो गया था और उस दिन वहाँ पहुँचकर अपने को बड़ा धन्य समझने लगा था। मुझे उस देश के दर्शन मिलेंगे, जिसे देखने की लालसा दिन-पर-दिन तीव्र होती जा रही थी। यह दिन मेरे लिए बड़े गौरव का दिन था। गौरव का दिन इसलिए था कि सोवियत संघ की वजह से आज दुनिया में शोषण समाप्त करने

के लिए हर तरह की लड़ाई लड़ी जा रही है और हर एक देश में मनुष्य स्वाधीन होकर अपने विकास की ओर प्रयाण करने के लिए तत्पर है।

वहाँ से हम, कार द्वारा, रूसिया होटल ले जाए गए। यहीं हमें ठहराया गया। मैं उसके कमरा नं० 2254 में ठहरा। कमरे में टेलीविज़न सेट, रेडियो लगा था। वह साफ़-सुथरा व सुसज्जित था। साथ में बाथरूम था, जहाँ ठंडे व गर्म पानी का प्रबंध था। हम लोगों ने चाय-काफ़ी आदि पी, फिर रात का भोजन किया। इसके पहले हम लोग मास्को शहर शाम को देख आए थे। मास्को और लुलुम्बा विश्वविद्यालय बाहर से देखा, नगर की सड़कों पर इधर-उधर कई जगह घूमे। नगर की सफ़ाई व व्यवस्था देखकर मैं तो बहुत प्रभावित हुआ। सड़कों के इधर-उधर ही वृक्षावली लगी थी। वृक्षावलियों के बीच से आदमियों के चलने का पथ बना था, बेंचें पड़ी थीं और कहीं कोई गंदगी नहीं थी। जो लोग आते-जाते दिखे वे संतुष्ट और प्रसन्न दिखे। नगर में, कहीं कोई तनाव या उदासी नहीं दिखी। मुझे तो वहाँ की इमारतें तक सहृदय लगीं और ऐसा लगा जैसे बड़ी शान से कह रही हों कि हम दूसरे असमाजवादी देश के नगरों की ऊँची इमारतें नहीं हैं कि अपने यहाँ के आदमियों को निगल जाएँ, वह खो जाएँ और उनका व्यक्तित्व दूसरों के दबाव से दब जाए। वे यह भी कह रही थीं कि हम अपने नगरवासियों का स्वागत करती हैं। उन्हें सुख-सुविधा व आराम देती हैं और उन्हें अपनी छाया में लेकर उनके दुःख-दर्द मेटती हैं और उन्हें रोज़ कर्मण्य जीवन जीने के लिए अपने से बाहर खेतों, फैक्टरियों, मदरसों, अनुसंधान शालाओं, दूकानों और कामकाज के विभिन्न स्थलों को भेजती हैं कि उन्हें युद्ध की विभीषिका फिर से न देखनी पड़े और वे संसार में रहकर शांति से समानता के आधार पर जीवनयापन कर सकें। मैं बड़ा खुश हुआ।

मास्को देखकर मैं प्रभावित हुआ और मैंने यह कविता लिखी

देखा मास्को

जनता का जीवंत नगर,
सबके लिए खुला,

दगादार के लिए-दुष्ट के लिए बुरा,
सहज बंधु के लिए सनेही,

सुखकर सगा, भला।
मानव,

गले कहीं दुनिया में,
यहाँ न गलता,

शोषण चले कहीं
दुनिया में,

यहाँ न चलता,
अच्छी, सच्ची, राजनीति है

पूरी पक्की,
जन-जन की हो रही इसी से

ख़ूब तरक़्क़ी।

फिर 12 मई को सबेरे का नाश्ता करके हमलोग मास्को के एयरपोर्ट पर आए। यहीं हम फिर 10 बजे दिन को ऐरोफ्लोट पर चढ़े और लेनिनग्राद पहुँचने के लिए उड़े। धूप चमक रही थी। आसमान का नीलापन श्वेताम्बरी हो रहा था। एक घंटे की यात्रा के बाद हमलोग लेनिनग्राद के एयरपोर्ट पर पहुँचे। एयरपोर्ट पर यहाँ मास्को से अधिक ठंडक थी। मुझे गर्मकोट पहने रहने पर भी अंदर तक ठंडक मालूम हुई। लेकिन वह भी सह्य थी। इसलिए मैंने परवाह नहीं की। हमलोग कारों द्वारा एस्टोरिया होटल पहुँचाए गए। कारें सरकार की होती हैं। रास्ते में काफ़ी समय लगा। धूप वहाँ भी थी। सड़कें साफ़-सुथरी, लंबी-चौड़ी चमचमा रही थीं। दोनों तरफ़ लंबे-लंबे चले गए पेड़ों की पंक्तियाँ, झीनी-झीनी छाया ज़मीन पर छोड़ रही थीं। बच्चे, औरतें व आदमी आते-जाते प्रसन्न मुद्रा में दिखे। यहाँ की इमारतें भी ऊँची और भव्य तथा कई मंज़िलों की हैं। पत्थरों की बनी हैं। मैं एस्टोरिया होटल के कमरा नं. 512 में श्री हरिदत्त शर्मा के साथ ठहरा। शाम को 4 बजे से 6 बजे तक विंटर पैलेस देखा। यहाँ 1500 कमरे हैं, म्यूज़ियम है, कमरे बड़े हैं। देखते-देखते हैरत हुई। मुझे इस नगर की सांस्कृतिक अभिरुचि का गहरा एहसास हुआ, जब मैंने विंटर पैलेस के भीतर का म्यूज़ियम देखा रूसी लोग अपनी

तमाम तरह की भौतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों की ऐसी देखरेख करते हैं और उन्हें ऐसे सुरक्षित रखते हैं कि जैसे वे उन्हें प्राण से भी अधिक प्यारी हैं। यही बात रह-रहकर मुझे मोह रही थी और मैं उनके प्रति मन-ही-मन कृतज्ञता प्रकट कर रहा था। जो लोग यह कहते हैं कि रूसी लोग प्राचीन के प्रति अत्यन्त अनुदार हैं और वे प्राचीन सभ्यता की समस्त देन को विनष्ट कर देते हैं और वे निरंकुश और निर्मम हैं, उनकी यह बात मुझे सरासर ग़लत मालूम हुई। रूसी लोग इतिहास को और उसके प्रत्येक चरण के चिह्नों को अपने लिए सुरक्षित रखते हैं, ताकि वे आज भी यह कह सकें कि कैसे, किन-किन परिस्थितियों से होकर आज वे समाजवाद को अपने यहाँ अवतीर्ण कर सके। मुझे याद है कि नाज़ी लोग या अमरीकी फ़ौजी लोग या कि दूसरे असमाजवादी देशों के फ़ौजी शासक जब जहाँ अपने पाँव रखते हैं, तब वहाँ की सभ्यता और संस्कृति के समस्त इतिहास की उपलब्धियों को चकनाचूर कर देते हैं। इसलिए मुझे यह देखकर विश्वास हुआ कि वे जहाँ और जब भी गए होंगे या जाएँगे, उन्होंने वहाँ भी उसकी ऐतिहासिक उपलब्धियों को नष्ट न किया होगा और न वे करेंगे आगे भी।

सोवियत संघ की राजनीति समाजवादी राजनीति है, इसलिए वह सही अर्थों में मानववादी है और सच ही जनतान्त्रिक स्वभाव की है।

इस विंटर पैलेस यानी शिशिर प्रासाद पर 26 अक्टूबर को क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया था और साथ ही चोद्रोवंस्की को इसका कमान्डेंट नियुक्त किया गया था, जिसके तुरंत ही बाद वह लेनिन से मिलने स्मोल्नी गए थे। यह प्रासाद मुझे प्रभावित कर सका और मैंने अपनी नोट बुक में उसे देखकर ही लिखा : Simply grand! इसे भीतर-बाहर से देखता रहा और देखते-देखते उन दिनों का इतिहास सोचता रहा और इतिहास को सोचकर तब की गई क्रान्ति का महत्त्व आँकता रहा। अब यह प्रासाद रूस की सारी जनता का प्रासाद है। इसे देखने देश-विदेश की जनता आती है और देख-देखकर दाँतों तले उँगली दबाकर चकित रह जाती है। शाम के छः बज चुके थे। प्रासाद बंद होने जा रहा था। इसलिए उसे देखकर फिर होटल वापस आया। मैंने देखा कि आठ बजे रात को भी सूरज पश्चिमी आसमान में काफ़ी ऊँचे चमक रहा था। रात दस बजे सूरज सोया था। रात होटल में सोता रहा और जब तीन बजे सुबह उठा, तब देखा कि सूरज का प्रकाश फैल चुका था।

दूसरे दिन, तेरह मई को दस बजे दिन, होटल से बस से चला और PESKEREVSKOE-MEMORIAL देखने पहुँचा। यह 26 हेक्टेयर क्षेत्रफल में था। प्रवेश करते ही सामने दिखाई दी विशाल खड़ी हुई, प्रतीकात्मक माँ की मूर्ति। बताया गया कि यह 1942 के वीरों का समाधिस्थल है। यहाँ लगभग पाँच लाख आदमी दफ़न हुए थे। यहीं पर कवयित्री ओल्गा बेल्पास भी दफ़न हुई हैं। मैंने देखा कि तमाम बच्चे आए थे और साथ में फूल-मालाएँ भी लाए थे। वे सब समाधियों पर मालाएँ चढ़ा रहे थे। समाधियों पर हँसिए-हथौड़े अंकित थे। यहाँ का वातावरण मर्मस्पर्शी था। करुणा से द्रवित प्रत्येक दर्शक शांतभाव से वीरों को नमन कर रहा था। मैं भी सन् '42 के रक्त-पात और तब की की गई नृशंस-बर्बरता को देख-देखकर क्षण-प्रति-क्षण विचलित होता रहा और हत्या करनेवालों को कोसता रहा और मरनेवालों की याद कर-कर उनको अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता रहा। सोवियत सरकार ने इस स्थल को सुरक्षित करके आनेवाली पीढ़ियों को यह जता दिया है कि युद्ध कितना भयंकर और विनाशकारी होता है कि फिर से उसकी पुनरावृत्ति कोई न करे। टेलीविज़न वाले वहाँ आए हुए थे, उन्होंने भी प्रसारण के लिए उस समय चित्र लिए।

साढ़े ग्यारह बजे दिन को हम लोग Smolni (स्मोल्नी) पहुँचे। यही वह स्थान है, जहाँ रात के सवा दो बजे चोद्रोवस्की लेनिन से मिले थे। तब लेनिन कमरे में काम करते हुए नई आज्ञाप्तियों के मुसव्विदे लिख रहे थे। इसके बाद यहीं सोवियतों की दूसरी काँग्रेस की बैठक हुई और मज़दूरों, सैनिकों तथा किसानों के नाम लेनिन ने एक अपील लिखी, जो काँग्रेस ने स्वीकार की। उस अपील का एक अंश इस प्रकार है —

'मज़दूरों, सैनिकों और किसानों के बहुमत की इच्छानुसार पेत्रोग्राद में हुए मज़दूरों और नगर-सेना के विजयी विद्रोह का समर्थन पाकर काँग्रेस सत्ता अपने हाथ में लेती है।... अस्थायी सरकार का तख़्ता उलट दिया गया है... सैनिकों, मज़दूरों और कर्मचारियों! क्रान्ति और जनवादी शांति का भाग्य तुम्हारे हाथों में है—क्रांति ज़िंदाबाद।' लेनिन ने युद्ध को मानव जाति के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध घोषित किया था। यहीं लेनिन ने भूमि-संबंधी वह आज्ञप्ति निकाली थी, जिसके अनुसार सारी भूमि की स्वामिनी जनता मानी गई और यहीं लेनिन के नेतृत्व में दूसरी काँग्रेस ने सरकार बना दी और जनता ने कम्युनिस्ट पार्टी को देश का शासन सौंपा। पहले यहाँ सम्भ्रन्ति और प्रतिष्ठित कुटुम्बों की औरतों के पढ़ने के लिए कॉलेज था। यह 1808 में बनी इमारत है। यहीं ब्रोत्स्की चित्रकार की सन् 1927 में बनाई हुई लेनिन की आदमक़द, रंगीन तस्वीर देखने को मिली। तस्वीर में लेनिन खड़े हैं, अपनी सहज-

साधारण गरिमा के साथ और उनके पीछे बह रही है एक नदी। दीवार पर पूरा संविधान सुनहरे अक्षरों में लिखा है। इस तस्वीर को देखते-देखते यही सोचता रहा कि कितना महान् था लेनिन, जो अपनी जनता के लिए ही रात-दिन जीता-जागता, सोचता-विचारता और क्रान्ति की निश्छल अगुआई करता था। काश, ऐसे नेता हमें भी हमारे देश में मिलते हमारा देश धन्य होता।

फिर मैं वहाँ से लेनिन का एक दूसरा घर देखने गया। वह भी लेनिन का म्यूज़ियम बना दिया गया है। यहाँ लेनिन का रेकार्डेड भाषण, उन्हीं की आवाज़ में सुना गया। मैं उसे समझ तो नहीं सका, लेकिन स्वरों के आरोह और अवरोह और व्यंजनों के प्रवाह से मुझे यह लगा कि उनके भाषण में उतार-चढ़ाव नाममात्र को था और वह कोई दो-टूक बात कर रहे थे, इस म्यूज़ियम को देखकर बहुत-सी और बातें मालूम हुईं कि लेनिन यहाँ कैसे रहे और किसके साथ व कब तक रहे।

वहाँ से होटल आया। खाना खाया, फिर सवा पाँच बजे 'फ्रेंडशिप पैलेस' देखने के लिए गया। यहाँ इंडो-सोवियत कल्चरल सोसाइटी का स्वामित्व है। लेनिनग्राद की म्यूनिसिपैलिटी ने, दूसरे महायुद्ध से नष्ट हो जाने पर, इसका पुनरुद्धार कराया था और इसे उक्त सोसाइटी को सौंप दिया था। इसमें, नष्ट होने के पहले, सोने का तमाम काम दीवालों पर अंकित था। युद्ध के बाद चौदह किलो सोना लगाकर म्यूनिसिपैलिटी ने उसे वैसा ही रूप दे दिया, जैसा पहले था। यहीं कई लोगों से बातचीत हुई। चाय-पानी हुआ। यहीं मिले: (एक) विक्तर बालिन, प्राध्यापक भारतीय भाषा-विभाग, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय (दो) रूदोल्फ वी० वाराबनोब, 1920 x11 लेनिनग्राद फोण्टैन्का-21, (तीन) पेत्तचेको वाई०, ओरियंटल फ़ैकल्टी, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय, लेनिनग्राद। साहित्य पर और कला पर बातें होती रहीं। यहीं पेत्तचेंको महोदय ने मुझे एक किताब दिखाई। उसमें लेनिन के ऊपर लिखी मेरी कविता का रूसी अनुवाद छपा था। अपना नाम तो मैंने पढ़ लिया, लेकिन कविता नहीं पढ़ सका। तब उन्होंने उसे पढ़ा और अर्थ बताया, निश्चय ही वह मेरी थी। यह बड़ी सुखद बात हुई। मैं प्रसन्न हुआ कि इस दूर विदेश में भी मेरी कविता को सराहा गया और मेरे आने पर पेत्तचेंको महोदय ने मुझे पढ़कर सुनाया। काव्य में ऐसी रुचि बहुत कम लोगों में होती है। लेनिनग्राद में काव्य कला, साहित्य और संस्कृति के प्रति निश्चय ही अत्यधिक अभिरुचि मिली। यहाँ भी टेलीविज़न के लोग साथ आए थे और अपना काम कर रहे थे। हम लोगों की तस्वीरें खिंचती रहीं। यहीं प्रसिद्ध रूसी लेखक टॉलस्टाय के परिवार की एक महिला ने आकर हिंदी में मेरा

अभिवादन किया और अपना परिचय दिया और मेरी कविता में अपनी रुचि का प्रदर्शन किया। वे हिंदी बोल रही थीं। अच्छी-ख़ासी तंतरुस्त महिला हैं रंग गेहुँआँ है। देखने में यूरोपियन नहीं लगती। स्वभाव से शालीन और मर्यादित। मुझे इनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं इन्हें देखकर उसमें टॉलस्टाय की मूर्ति देखता रहा।
फिर रात आरइ और होटल में सोया —

चौदह मई को साढ़े दस बजे दिन होटल से दास्तोवस्की स्ट्रीट गए। यहाँ उनका घर था। यह रूस के महान् उपन्यासकारों में हैं, किराए के मकान में रहते थे। लेनिनग्राद में ही कई घरों में किराए पर रहे थे। यह घर उन्हीं में से एक था। इसी घर में उनके नाम का म्यूज़ियम है। यह म्यूज़ियम दो भागों में है। एक भाग में उनका साहित्य संगृहीत है, दूसरे भाग में उनके कॉलेज और बचपन के दिन बीते थे। वे 13 अक्टूबर, 1821 को पैदा हुए थे। इनकी माँ, मास्को के एक व्यापारी की पुत्री थीं, जिनका देहावसान 1837 में हुआ। इनके पिता ने इन्हें पेत्रोग्राद के इंजीनियरिंग कालेज में पढ़ाया। लेकिन दास्तोवस्की को, उनकी प्रतिभा ने, इंजीनियरी से हटाकर उपन्यासकार बनाया और वे मानवमन की अतल गहराइयों के सूक्ष्म चित्रण के विश्वविख्यात उपन्यासकार हो गए। इनके उपन्यासों में अपराधी वृत्तियों के नर-नारियों के मनोजगत् का बड़ा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। इनके उपन्यासों के पात्रों से तब के आदमियों के जीवनवृत्त का आकलन मिलता है। यह मालूम होता है कि उस समय के गए-गुज़रे लोग, अपने समाज में, कैसे जीवन यापन करते थे और किस बुरी तरह से सव्त्रस्त और उपेक्षित रहते थे और इसपर भी किन-किन तरीक़ों से ज़िंदगी जीते और अपनी आयु अंधकार को समर्पित करते थे। इसी म्यूज़ियम में उनकी पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ देखीं। छपी हुई उनकी पुस्तकें देखीं। तब के छपे हुए अख़बारों में उनके बारे में टिप्पणियाँ देखीं। उनके चित्र भी देखे। उनके उपन्यास के पात्रों के, तब के बनाए गए चित्र भी देखे। इन्हें देखकर कुरूपता और विरूपता का एहसास हुआ और साथ-ही-साथ यह भी एहसास हुआ कि दास्तोवस्की स्वयं इनको चित्रित करने के लिए कितना कुछ नहीं, इनके साथ मिल-मिलाकर वैसा ही भोगते रहे होंगे। शायद कोई दूसरा यह काम नहीं कर सकता था, अगर दास्तोवस्की न होते, तो ऐसे उपन्यासों के लिखे जाने की संभावना कम ही होती और अगर होती भी, तो उनके बहुत बाद होती। यहाँ एक सम्मति-पुस्तिका रखी हुई थी। इसमें आए गए लोग अपनी प्रतिक्रिया अंकित कर जाते थे। मैंने भी इसमें हिंदी में ही यह नोट किया—'मानव-मन की गहराइयों में उतरनेवाले इस महान् उपन्यासकार के इस म्यूज़ियम को देखकर मुझे प्रसन्नता

हुई।' मुझे विश्वास है कि मेरे न रहने पर भी मेरे ये शब्द कालान्तर तक वहाँ उस देश के हृदयपृष्ठ पर अंकित रहेंगे।

इसके बाद सोवियत संघ के लेखक-संघ की लेनिनग्राद शाख़ा में गया। वहाँ उस शाख़ा के मंत्री जी० होलोपोव, कवि वी० तोरोपीजिन से भेंट और वार्ता हुई। मंत्री महोदय ने बताया कि सोवियत संघ में यह शाख़ा द्वितीय है। साहित्य की सभी विधाओं के लेखक, कवि और नाटककार इसके सदस्य हैं। इसका प्रत्येक लेखक कोई विषय चुने या लिखे, वह स्वतंत्र है। किसी पर कोई दबाव या ज़ोर-जबर नहीं है। संघ का कर्तव्य है कि वह लेखकों को एकताबद्ध करे। मंत्री महोदय को छूट है कि वह जीवन के प्रमुख विषयों पर लिखने के लिए लेखकों को अपना सुझाव दे सकते हैं, पर वे उन्हें कोई आदेश नहीं दे सकते। इस शाख़ा के कई भाग हैं, कवियों, उपन्यासकारों व नाटककारों इत्यादि से संबंधित। यहाँ लेखक आते हैं। अपनी समस्याओं पर विचार विनिमय करते हैं। कोई भी लेखक अपनी कृति को ले जाकर शाख़ा के अपने विभाग के लेखकों से उसपर विचार-विनिमय कर सकता है। वहाँ के लोग उन कृतियों की आलोचना-प्रत्यालोचना भी करते हैं, कभी-कभी कोई-कोई लेखक इससे बुरा भी मान जाता है। हाँ, एक बात और मंत्री महोदय ने बताई कि छपने से पहले किसी भी उपन्यास को वहाँ के चार सम्पादक देखते हैं और तब वह छपने को भेजा जाता है। नई कविताएँ और नए उपन्यास पहले मासिक पत्रिकाओं में छपते हैं और फिर पुस्तक रूप में, लेखकों को पहले ही कुछ धन मिल जाता है, संकट की घड़ियों में शाख़ा लेखकों को आर्थिक सहायता भी देती है, दवा-दारू की व्यवस्था भी करती है। सैनीटोरियम भेजने में मदद करती है। ज़रूरत पड़ने पर अर्थहीन लेखक को मासिक वेतन भी देती है और यह भी व्यवस्था करती है कि वह देश को देखें और देखकर लिखें। शाख़ा देश के दूसरे स्थानों के लेखकों से मिलने-मिलाने के अवसर भी प्रदान करती है और सम्पर्क सूत्र भी स्थापित करती है। इसमें लेखकों का क्लब भी है, इस शाख़ा में लेखकों को कमरे भी दिए जाते हैं कि वे वहाँ बैठकर अपना लेखन-कार्य कर सकें। उनके खाने इत्यादि का प्रबंध भी होता है।

इसके बाद कवि महोदय ने हमें बताया कि जब घर में लिखना संभव नहीं होता तब वे यहाँ आकर लिखने का कार्य करते हैं। इन्होंने मंत्री महोदय की बातों का समर्थन किया और बताया कि 'आरोरा' (Aurora) नामक मासिक पत्रिका भी निकाली जाती है। उनकी रचनाएँ भी छापी जाती हैं। प्रसिद्ध लेखकों की रचनाएँ भी छपती हैं। नए रचनाकार अपनी रचनाएँ दूसरी पत्रिका में भी छपा सकते हैं, कोई रोक-टोक नहीं है। यह पत्रिका नए रचनाकारों की

मदद करती है। यहाँ से एक वार्षिक पुस्तक भी प्रकाशित होती है, जिसका नाम 'यंग लेनिनग्राद' होता है। पेशेवर लेखकों को भी यहाँ पर सुविधाएँ उपलब्ध हैं। किसानों, मज़दूरों, कॉलेजों, नगरों और गाँवों के नए-पुराने सभी लेखकों को यह अपनी सहायता दिया करती है। इस संघ को यह श्रेय प्राप्त है कि यह कई प्रतिभाशाली नए लेखकों को सामने ला सका है— वे विश्वविद्यालयों से संबंधित हैं और बौद्धिक व्यक्तित्व रखते हैं। कवि महोदय ने साहित्य के विषय में बताया कि वह एक तो नागरिकता-प्रधान होता है और दूसरे काव्यमय होता है, जिसमें परंपरा को अपनाया जाकर अच्छी कविताएँ लिखी जाती हैं। उनकी शाख़ा की सबसे कम उम्र की महिला कवयित्री अलेक्सीव हैं। पाठक उनकी कविताओं को बड़ी रुचि से पढ़ते हैं और उनका बड़ा मान-सम्मान है।
इस महानगर लेनिनग्राद को देखकर मैंने लिखा :

देखा
लेनिनग्राद,

अदेखा सूरज देखा,
सहस्रार से

खिले नगर का
अचरज देखा।

देखा
मानववाद,

अदेखा उत्सव देखा,
जनता से

प्रतिबद्ध काव्य का
सौष्ठव देखा।

मास्को राजनीतिक चेतना का महानगर है। लेनिनग्राद सांस्कृतिक चेतना का कलात्मक महानगर है, दोनों अपने-अपने ढंग के महत्त्वपूर्ण महानगर हैं।

फिर रात को होटल आया और वहाँ से इरीवान (Yere Van) जाने के लिए अर्धरात्रि के बाद लेनिनग्राद से हवाई अड्डे पर पहुँचा। बड़ा सुंदर हवाई अड्डा है। रात को ही हवाई जहाज़ से उड़े। दूसरे दिन सबेरे छः बजे के लगभग इरीवान के हवाई अड्डे पर उतरे। वहाँ से ANI होटल गए। वहाँ के फ़्लैट नं० 7 के कमरा नं० 618 में मैं और श्री हरिदत्त शर्मा एक साथ ठहरे। इस होटल का नामकरण वहाँ के प्रसिद्ध साहित्यकार सदरुद्दीन ऐनी के नाम पर हुआ जान पड़ता है।

दोपहर को मारटिरास सारियान (Martiros Sarian) म्यूज़ियम देखने गया। यह इसी नाम से प्रसिद्ध चित्रकार की यादगार में बनाया गया, इन्हीं के चित्रों का संग्रहालय है। चित्रों को देखता रहा। चित्रों में व्यक्त चित्रकार के दिल और दिमाग़ से निकले रंग रूप में अंकित वहाँ के परिवेश और इसमें जीनेवाले आदमियों को अपने इन्द्रियबोध से पकड़ता रहा। मैं तन्मय और तल्लीन रहा। कलाकार अदृश्य से जैसे बोलता रहा और मैं उसे सुनता रहा। मुझे चित्रों की भावभंगिमायें समझ में आने लगीं। उनका मौन भी सार्थक वाणी बन गया। मैं उस वाणी से विभोर होता रहा। अपने से विसुध मैं उन्हीं में खोया रहा। रंगों का सूक्ष्म तरल प्रवाह प्रकृति के देह की चित्रमयता निरूपित करने में पूर्णतया सक्षम हुआ था। मानव-शरीर की आकृतियों से पौरुष और कर्मठता साकार हुई थी। जहाँ कला अमूर्तन का आभास देती थी, वहाँ भी वह कलाकार के अंतर्मन के गहरे मानवीय बोध को ही व्यक्त करती थी। मैंने उन चित्रों में न आदमी खोया हुआ पाया, न उसका भीतरी और बाहरी परिवेश। कला सफल हो गई थी, आदमी की सेवा में लगकर। उदास आदमी भी आदमी लगा-वह न झील में डूबा कुरूप बादल का टुकड़ा लगा, न कील से लटकता टँगा, चीकट मैला-कुचैला कपड़ा। उदास प्रकृति भी प्रकृति लगी वह मरे हुए कुत्ते की लाश नहीं लगी। आज की अमूर्त कला से भिन्न इस चित्रकार की अमूर्त कला थी। आज तो अमूर्त कला विसंगतियों को उरेहती है और जो नहीं है जो नहीं हो सकता-उसको रूपायित करती है, इसीलिए किसी की समझ में नहीं आती। कोई भी कला जब मानवीय सम्पर्क से वंचित हो जाती है, अन्यथा उसके परिवेश से पलायन कर जाती है और तान्त्रिकों की अथवा अघोरियों की वृत्तियों का विदूषण पा लेती है, तो वह कला नहीं रह जाती, वास्तव में अनाप-सनाप हो जाती है। मैं इस प्रसिद्ध कलाकार की

सराहना करता रहा और उसकी मानवीयता से अभिभूत होता रहा। इनका जन्म 28-2-1880 में हुआ था।

यह म्यूज़ियम तिमंज़िला है। इसमें सारियान की 150 तस्वीरें और ग्राफ़िक्स हमेशा देखी जा सकती हैं। पेरिस में सन् '37 में उनकी चित्रों की अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी हुई थी। वह आरमीनिया की विज्ञान अकादमी के सम्माननीय सदस्य सन् 1956 से रहे। सन् 1960 में उन्हें सोवियत संघ का जन-कलाकार होने का पुरस्कार मिला।

म्यूज़ियम से लौटकर होटल आया। लंच लिया, उसके बाद इरीवान से बस द्वारा हम लोग 70 किलोमीटर का रास्ता तय करके वहाँ पहुँचे, जहाँ सेवान झील थी। इसे सागर भी कहा जाता है। यह विशाल है। इसके एक तरफ़ रेलवे स्टेशन है। स्टेशन कुछ ऊँचाई पर है। वहाँ के लोगों ने हमलोगों को अपने स्नेह से भाव-विभोर किया। पानी बरसा, बादलों की फुहार को हमलोगों ने अपने ऊपर लिया। उन्हीं लोगों ने हमें स्वादिष्ट भोजन खिलाया। पेय भी पिलाया। उनके आतिथ्य-सत्कार की याद आज भी ताज़ा है। झील के दूसरी तरफ़ ऊँची पहाड़ी का सिलसिला चला गया है। जल में उठती लहरियाँ अनम्त काल की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म संवेद्य चेतना का नाद-नृत्य कर रही थीं। मैं काल के अंतर्मन में डूबा अपनी धरती का सौंदर्य निहार रहा था। आकाश के आक्रोश में भी वह धीरज नहीं छोड़ती और अपने कर्मठ पुत्रों को आश्रय और अवलम्ब दिए रहती है। मैं खड़ा तो तट पर रहा बड़ी देर तक, परंतु खड़े-खड़े में ही जल के वल्कल वसन पहनकर नाच-नाच उठता रहा। देर हो रही थी। फिर हम लोग वापस चल दिए। मैंने दिन को बिदा दी। उसने हमें बिदा दी। हम फिर उसी रास्ते से अपने होटल आए। रात होटल में बिताई। मैं उस झील के सपने देखता रहा। उसकी मछलियों की कहानी सुनता रहा।

दूसरे दिन 16/5 को सुबह होटल से बाहर निकल आस-पास की सड़कों में टहला-घूमा। दुकानें देखता रहा। दूकानों में भरा माल-मत्ता देखता रहा। आते-जाते लोगों की चाल-चलन देखता रहा। जिसे देखता, उसी के मन में बैठने का प्रयास करता और कुछ-न-कुछ गुपचुप जान लेने का उपक्रम करता। मैं भाषा की सामर्थ्य छोड़कर, भाषा से परे पहुँचकर, केवल भाव-भंगिमाओं से हाव-भाव से, नाक-नक़्शे से, गति-गमन और शरीर-सन्तुलन से उस नगर के निवासियों की चित्तवृत्तियों को जानता-पहचानता रहा और यह निष्कर्ष निकाल सका कि यहाँ के लोग-बाग तन और मन से खुशहाल हैं और दीन-हीन मनोदशाओं के शिकार नहीं हैं।

उन लोगों को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई और मैं आश्वस्त हुआ कि मनुष्य यहाँ भी अपनी गरिमा तो पा रहा है।

साढ़े दस बजे दिन में इरीवान-स्थित बच्चों की चित्र-गैलरी देखने गया। चार साल पहले गैलरी में प्रदर्शनी दिखाने का काम शुरू हुआ था। तब से अबतक साठ प्रदर्शनियों का आयोजन हो चुका है। इस प्रदर्शनी में जिसे हम देखने गए थे, केवल एक स्कूल के बच्चों के बनाए हुए चित्र दिखाए गए थे। अब यह प्रदर्शनी बराबर हुआ करेगी। विदेश के स्कूलों के बच्चों के चित्र भी यहाँ मँगाए जाएँगे और दिखाए जाएँगे। यहाँ से भी रूसी बच्चों के बनाए चित्र प्रदर्शन हेतु विदेश भेजे जाएँगे, वहाँ वे बच्चों के चित्रों की प्रदर्शनियों में दिखाए जाएँगे। इस एक ठोस प्रयास से मैं अत्यंत प्रभावित हुआ। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि सोवियत भूमि में बच्चों की कलात्मक प्रतिभा को बड़े उत्साह और लगन के साथ विकसित किया जा रहा है। सोवियत सरकार समाजवादी चेतना के अंकुरों को अपनी ममता से इस क़ाबिल बना रही है कि वे भविष्य के सिरमौर बनें और उनकी कला से मानव-समाज का कल्याण हो। अन्य देशों में बच्चों की कलात्मक अभिरुचि के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, तभी तो विरले ही प्रसिद्ध होने का अवसर पाते हैं। साधारणतया तो वहाँ कला का भी पूर्णरूपेण शोषण किया जाता है और बचपन में ही प्रतिभाओं को कुण्ठित कर दिया जाता है।

मैंने एक चित्र में एक पेड़ बना देखा। पेड़ में एक लाल फल देखा। उस एक फल को ही तोड़ रहा था एक आदमी, जो घोड़े पर सवार था और घोड़ा था कि ज़मीन से उठा उड़ा जा रहा था। मैं इस चित्र को देखकर स्तम्भित रह गया। उस चित्र का अर्थ लगाने लगा। उससे बालक-चित्रकार की चेतना के अंदर पैठने लगा। निश्चय ही बच्चा अपने परिवेश से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। दृश्य में घोड़ा है। वह पूरी ताक़त से ज़मीन से उठा उछाल की स्थिति में है। बालक ने इस स्थिति में कभी-न-कभी घोड़े को देखा ही होगा। तभी तो वह इस चित्र में आ गया। घोड़ा है तो घुड़सवार होना ही चाहिए, जो घोड़े को अपनी सफलता के लिए इस्तेमाल करे। चुनान्चे घोड़े पर सवार है एक सवार। प्रकृति उदार होती है। पर अपने फल सहज ही नहीं देती। आदमी को कठिन प्रयास करना पड़ता है कि वह फल पा सके। पेड़ ऊँचा है। आदमी उसपर चढ़ सकता था। परंतु नहीं, उस बालक चित्रकार ने आदमी को पेड़ पर नहीं चढ़ाया, क्योंकि उसे सविशेष प्रयास करने का एक जीवंत चित्र खींचना था और ऐसे ही प्रयास का चित्रण उसने घोड़े पर सवार को चढ़ाकर और घोड़े को उछालकर फल की ओर गया

दिखाकर किया। इस कलात्मक बिम्बविधान से एक साधारण से दृश्य में जान पड़ गई और देखने वाला मुग्ध हुए बिना न रह सका।

समाजवादी चेतना का यह प्रारंभिक प्रदर्शन मात्र था। ऐसी चेतना ही तो आगे चलकर बड़े-बड़े असंभव कार्यों को संभव करती है और साहसिक इतनी होती है कि ज्ञान की खोज में अंतरिक्ष में सदेह प्रवेश करती है और संसार को चकित कर देती है।
एक चित्र में हाथी दिखाया गया। बच्चों को हाथी विशेष प्यारा है। हाथी देखने में सबसे बड़ा होता है और अपनी स्थूलकाया से सूंड़ लटकाए हुए चलते-चलते में सब कुछ लपेट लेने की मुद्रा में अजूबा भी लगता है। धूल उड़ाता है, तो अपने और दूसरों को धूल-धूसरित कर देता है। जब सूंड़ में पानी भर-भरकर फुहारें मारता है, तो रिमझिम बरसात कर देता है। जब बड़े-से-बड़े बोझ को पीठ पर लादकर चलता है, तो आँखें देखती ही रह जाती हैं। तब वह पहाड़ ही लगता है। शायद इसी सबको व्यक्त करने के लिए बालक चित्रकार ने हाथी का चित्रांकन किया था। घोड़े कई चित्रों में दिखे। स्वाभाविक है ऐसा अश्व-प्रदर्शन। घोड़े तो सहज में ही दुनिया में हर जगह दिख जाते हैं। फिर सरकस में हाथी और घोड़े तो अपना-अपना कमाल दिखाते ही रहते हैं और बच्चों को सरकस देखना भी बहुत अच्छा लगता है। संभवतः इसीलिए तो बालकों को समाजवादी चेतना में पशुओं को बिम्बित होने का प्रश्रय मिला।

एक दूसरा चित्र, देखते ही अपनी क्रूरता से क्षुब्ध कर देता था। एक घोड़ा था। घोड़े की दुम के बालों से आदमी के सिर के बाल बंधे थे। घोड़ा गति की मुद्रा में था। आदमी ज़मीन में घिसट रहा था। बालक तो स्वभावतः कोमल और दयालु होते हैं। ऐसी निर्दयता उनमें नहीं होती। फिर भी उस बालक चित्रकार में ऐसी प्रवृत्ति के दर्शन हुए। ऐसा क्यों हुआ? मैं सोचता रहा। समाजवादी देश में तो बालकों के प्रति आदमी भी बहुत स्नेह दिखाते हैं और उन्हें अपनी ममता भरपूर देते हैं, तो फिर क्यों ऐसा हुआ कि बालक अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति में आदमी के प्रति एकदम अनुदार और बर्बर हो गया? बालक के लिए घोड़ा आदमी से अधिक महत्त्व का हो गया, क्यों? शायद बालक आदमी को, उसके किसी जघन्य अपराध के लिए दंडित कर रहा है। यह समाजवादी समाज के बालक का नैसर्गिक दंड-विधान मालूम पड़ता है। हो सकता है कि बालक ने यह सोचा हो कि उसके देश में आदमी के प्रति वही ऐसा क्रूर बर्ताव कर सकता है, जो व्यक्ति मदान्ध होकर अपनी आदमियत खोकर पाशविक वृत्ति का हो गया हो।

एक दूसरे चित्र में दूल्हा-दुलहिन का चित्रांकन किया गया था। दूल्हा श्वेत शरीर का काला कपड़ा पहने था। दुलहिन लाल ओठों वाली हरे वस्त्र पहने थी। आकर्षक रंग-योजना थी। एक अन्य चित्र में शेर और जेबरा भी देखने को मिले। नदी, नाव, मछली, जाल, तालाब इत्यादि भी बच्चों को प्रिय लगे थे। उन्होंने इनका भी चित्रांकन किया था। एक काला चीता बनाया गया था। उसकी आँखें, मुँह, उसके दाँत विशेष आकर्षक बनाए गए थे। वैसे चीता काला नहीं होता। परंतु, उसे काला बनाकर उसकी आँखों, उसके दाँतों और मुँह को उभारा गया था। उस पशु की बर्बरता साकार हो गई थी।

एक ऐसा भी चित्र था, जिसमें सिर तो स्त्री का और शेष शरीर पक्षी का था। शायद बच्चे के मन में यह आया रहा हो कि चिड़िया भी रहे और स्त्री भी रहे। तो स्त्री के एवज़ में उसका सिर आ गया। बच्चे माँ-बहन की मुखाकृति से ही तो अधिक प्रभावित होते हैं। चिड़िया का उड़ना बच्चों को बहत भाता है। इसलिए माँ हो या बहन वह शेष अंगों से चिड़िया बना दी गई कि उसके ऐसे चित्र से उसकी भावनाएँ दोनों के प्रति व्यक्त हो सकें। न वह माँ-बहन को छोड़ सकता है, न पक्षी को। सिर छोटा और आँखें छोटी और मुँह भी छोटा ही होता है। वह बोलता भी है तो समझ में नहीं आता। माँ-बहन का बोलना प्यार की अभिव्यक्ति करता है। फिर आज के युग में अंतरिक्षयान की यात्राएँ हो रही हैं। बालक मन में ऐसे यान का आकार अभी बन नहीं पाया, इसलिए उसने यान के बजाए स्त्री को पक्षी बनाकर उसे अंतरिक्ष की उड़ान करा दी।

एक गाड़ी में लाल रंग का घोड़ा जुता है। गाड़ी में बैठा है एक लड़का, जो गिटार बजा रहा है। गिटार को खड़ा किए है, सभाले है एक कुत्ता। यहसब साधारणतया नहीं होता। बाल मन ने ऐसा चित्रांकन करके अपनी मनोभावना को प्रकट कर दिया है। बच्चे को कुत्ता प्रिय है। उसे संगीत प्रिय है। उसे घोड़ागाड़ी प्रिय है। कुत्ता उसका प्यारा साथी है। इसलिए वह गिटार बजाता है। दोनों आनंद लूटते हैं और उसका साथी कुत्ता उसके संगीत-समारोह में उसकी सहायता करता है। समाजवादी समाज का बालक संगीत को अपने पूरे परिवेश से जोड़ता है और दूसरों के लिए भी प्रभावशाली बनाता है।

एक बालक ने अपने चित्र में उल्लू बनाया था। साधारणतया आस-पास उल्लू कम दिखाई देते हैं। फिर भी इस बालक चित्रकार ने उसे कहीं-न-कहीं देखा ही होगा, तभी तो वह उसे चित्रांकित कर सका। मैं इस चित्र-प्रदर्शिनी को देखकर अपने देश के बच्चों के बारे में

सोचता रहा। काश, उनकी रचनात्मक प्रतिभा को ऐसे ही विकसति करने के साधन उपलब्ध होते, तो वह अपने परिवेश और देश से जुड़ सकते और उनकी भावनाएँ संस्कारित हो सकतीं। ऐसा नहीं हो पा रहा अपने देश में। तभी तो हमारे देश के बच्चे उच्छृंखल और उद्दण्ड होते जा रहे हैं। केवल स्कूल में जाकर ही वह कभी भी अब सुधर नहीं सकते। उनको ज्ञान तो किताबों से मिल सकता है, परंतु पुस्तकें उनकी चित्तवृत्तियों को दृष्टि और दिशा देकर माता-पिता के गुणों से सम्पृक्त नहीं कर सकतीं। आवश्यकता है इस ओर तुरंत ध्यान देने की।

बारह बजे दिन 'आरमीनियन' चर्च देखने गए। बहुत बड़ा कंपाउंड था। उसमें साफ़-सुथरा और सुरक्षित गिरजाघर था। एक बजे दिन तक देखते रहे। यह गिरजाघर कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट गिरजाघरों से भिन्न था। इस चर्च में वे सब उपहार-जो विभिन्न देशों के इसके मतावलम्बियों से बरसों पहले इसे मिले थे, संगृहीत देखे। अठारहवीं सदी में मद्रास से इसे दो कपड़े के चित्र (दीवाल में टाँगने के) मिले थे। उन्हें देखकर ऐसा लगा कि जैसे हम मद्रास पहुँच गए हों। दोनों नगरों के बीच की दूरी समाप्त हो गई थी।

सवा एक बजे दिन उस स्थल को देखने गए, जहाँ खुदाई करके भू-गर्भ से एक गिरजाघर का अवशेष निकाला गया था। यह ज्वार्थ नोट्ज (zvarth notz) नामक कथीड्रल था। इसके 3 खंड थे। गोलाकार इमारत की शकल में था। इसका फन की शक्ल का गुंबद था। इसकी खुदाई सन् 1905 में शुरू हुई थी। सन् 1937 में इसका म्यूज़ियम स्थापित किया गया। यहाँ मुझे अपने देश की बनी मिट्टी की बड़ी डहरी जैसी एक डहरी भी देखने को मिली। अन्य बरतन भी देखे, जो मिट्टी के ही बने थे। लोहे की चाभियाँ और ताले भी देखे। बिल्कुल अपने यहाँ के जैसे, वैसे ही बड़े-बड़े भारी और मज़बूत जैसे हमारे देश में पहले बना करते थे। पत्थर की बनी ज़मीन पर अंकित सूर्य घड़ी देखी। इसमें गिनती के बजाए आरमीनियन भाषा के अक्षर अंकित थे। इसमें बीच में एक छेद था। मेरे गाँव के मदरसे में सन् '21 में जैसे खपड़े छाए रहते थे, वैसे ही खपड़े यहाँ खुदाई में मिले देखे। पुरानी कारीगरी भी देखने को मिली। पत्थर पर खुदी हुई अंगूरलताएँ देखीं। अलंकरण का शिल्प मन-मोह रहा था। एक बड़ा गड्ढा भी देखा। बताया गया कि इसमें अंगूर से निकाला गया रस संचित किया जाता था और भी अवशेष देखे। रहने के घरों में पत्थरों के बीच में मिट्टी (पकाई हुई) की पाइपलाइन ले जाई गई थी। इन पाइपलाइनों से पानी बहकर आता था, इसके अलावा वहाँ पानी गर्म करने के पहले

के स्थल देखे। तब के ज़माने में आरमीनिया का प्रतीक ईगल था। वह भी एक पत्थर पर खोदकर तब बनाया गया था। अब तक सुरक्षित है।
एक कुआँ भी देखा। वह 50 मीटर की गहराई का था। तब भी इतना ही गहरा था। उसीसे उस गहराई से तब पानी निकाला जाता था।

लगभग दो बजे दिन को हम लोग बराक्का का स्टेटफ़ार्म देखने गए। वहाँ 300 हेक्टर भूमि पर अंगूर की खेती की जाती है। 100 हेक्टर भूमि पर अन्य फलों की खेती होती है। यहाँ चार सौ आदमी रहते हैं, जो किसी-न-किसी रूप में इस फ़ार्म से संबद्ध हैं। कुछ के अपने घर हैं। कुछ फ़ार्म के घरों में रहते हैं। यह फ़ार्म छोटे बच्चों की देख-रेख का पूरा प्रबंध करता है। यहाँ उनके लिए किंडरगार्डन स्कूल स्थापित है। उसे देखा, बहुत-बहुत तरह के खिलौने थे। बच्चों के सोने के लिए व्यवस्थित और सुंदर प्रबंध था। पालनों में स्वच्छ सफ़ेद गद्दे और तकिए लगे थे। औरतें उन बच्चों की देख-रेख कर रही थीं। यह पक्की इमारत थी, दो खण्ड की। हर कमरा सुसज्जित था।
अंगूर का खेत देखने गए। अभी पौधे बड़े न हुए थे। अगस्त में फल आना शुरू होगा। जाड़े में इन पेड़ों को मिट्टी से ढँककर दबा दिया जाता है, ताकि बरफ़ इन्हें मार न डाले।

शाम 7.30 बजे एक 'बैले' देखने गए। यह एक पुराने संगीतज्ञ (कंपोज़र) के जीवन पर आधारित नाट्य प्रदर्शन था। बताया गया कि उस संगीतज्ञ ने जब अपने देश का करुण इतिहास पढ़ा, तो वह असंतुलित मस्तिष्क का हो गया। तुर्कों ने आरमीनिया पर हमला किया और उसे ध्वस्त किया था। उस ध्वंस का इतिहास वेदनामय था। वेदना की तीव्र अनुभूति ने आरमीनिया के उस संगीतज्ञ को पागल बना दिया। इसी मार्मिक घटना को लेकर संगीत-नृत्य-नाटिका लिखी गई थी। उसी नाटिका का प्रदर्शन था। इसमें जनता से एक होकर अपने देश का पुनरुद्धार करने की ललकार और पुकार का अभिव्यंजन हुआ था। हमलोग देखते रहे। संगीत से प्रभावित होते रहे। हमारे हृदय द्रवीभूत हुए। इसके द्वारा, जो सामूहिक नर-संहार हुआ था, वह साकार हो गया था। जलियाँवाला बाग़ का हत्याकांड जब हमें अत्यधिक मर्माहत कर सका, तो यह तो उससे भी बड़ी दारुण और हृदयविदारक घटना थी। हमसब तब इससे क्यों न प्रभावित होते।
'बैले' का स्वरान्त निराशाजनक न होकर मानवीय गुणों का पोषक एवं उत्साहजनक और आशाप्रद था। फिर जनता देश का निर्माण करती हुई दिखाई गई थी। यहसब मंच पर

सामूहिक रूप से दिखाया जा रहा था। इसे राष्ट्रीय बैले की संज्ञा दी गई है। हम अपने देश में अभी भी इसतरह के प्रदर्शन करने की ओर सक्रिय नहीं हुए। हमारे देश की नाट्य और नृत्य-प्रतिभा अभी भी मन बहलाने के लिए ही प्रयुक्त होती है। भविष्य में यदि ऐसा न किया गया, तो हमारा रंगमंच जन-जीवन से कटकर कुछ दिनों में नष्टप्राय हो जाएगा।

रात होटल में रहे।
दूसरे दिन सुबह दस बजे हमने होटल छोड़ा। एक प्रसिद्ध म्यूज़ियम देखने गए। वह इस दिन बंद था। हम उसे न देख सके। वहाँ से लौटकर हम लोग शहीदों का स्मारक देखने गए। कंकरीट का बना था। विशाल आकार का था। वहाँ पर एक ऊँचा होता चला गया, नोकीला होता गया, स्पाइरल की शकल को साकार किया गया था। देखकर हैरत होती थी। ज़ियादा देर तक देखना दूभर था। गरदन पिराने लगती थी। उस कंकरीट के बने स्मारक से लगातार आग की एक लाल लपट निकला करती है। साथ-ही-साथ एक कोमल दर्दभरा संगीत-स्वर भी अनवरत रूप से बजता रहता है। यह स्वर नीचे के खण्ड से उठकर ऊपर आता है। मैंने भी शहीदों को अपनी और अपने देश वासियों की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की।

राजदान नदी के तट पर बसा यह इरीवान नगर अपने प्राकृतिक सौंदर्य में अनूठा है। यह अरारात घाटी के उत्तर-पूर्व में स्थिति है। कई बार पदाक्रान्त हो-होकर बार बार जी उठा और जन-जीवन का प्रिय केन्द्र बन चुका है यह नगर। इसी से इसकी शोभा और भी अनूठी है। इसके चारों तरफ़ के खड़े दमदार पहाड़ बरफ़ से ढंके हुए हैं। इसकी नदियाँ भी वही संघर्ष भोगकर प्रवाहित होते-होते अब इसके रूप के अनुरूप ही इसका गुणगान करती रहती हैं। यहाँ के लोग बड़े रंगीन मिज़ाज के दिखे ऊपर से और भीतर से, सौंदर्य का वरण तो कर ही लिया है यहाँ की कामिनियों ने, प्रकृति भी उनके सौंदर्य से सुखदा, फलदा और प्रमदा हो गई है।
मैंने इस मनहर नगर पर भी एक कविता लिखी। वह इस प्रकार है :

आकर्षण का यह नगर
मनोभव की माया से

क्षण-क्षण नूतन,

हृदय हृदय को

मोह मोह कर,
दिक दिगंत को वशीभूत कर,

ज़रा-मरण को जीत चुका है।
इसे जीत कर,

मुग्ध-मगन-मन
नाच रही है मेरी कविता,

परा और अपरा मुद्राएँ
साज रही है मेरी कविता।

रात होटल में बिताई।
17/5 को मैंने टेलीविज़न वालों को अपने विचार रेकार्ड कराए।

फिर सदियन की पेंटिंग देखने गया।
फिर माथेण्डारान (म्यूज़ियम फॉर आल) म्यूज़ियम देखा। प्रभावित हुआ। तमाम लोग देख रहे थे।

शहीदों का म्यूज़ियम भी देखा।
फिर बारह बजकर पचपन मिनट पर दोपहर के समय इरीवान से हवाई जहाज़ पर चढ़कर उड़े। हम लोग दोशाम्बे 6 बजे शाम पहुँचे। दोशांबे नाम के शानदार होटल में ठहरे। सोने के पहले इधर-उधर सड़कों पर चहलक़दमी की। देखते-सुनते रहे। गुलाब-ही-गुलाब, बड़े-बड़े गुलाब, जहाँ देखो वहाँ खिले थे। होटल के कंपाउंड में, होटल से बाहर, वसंत-श्री श्रृंगार किए मन मोह रही थी। इस नगर में भी जादू-जैसा प्रभाव पड़ा।

अठारह मई को होटल से हमलोग सामूहिक फ़ार्म (कोलखोज) देखने गए। इसका नाम था 'कलेक्टिव फॉर्म सेकंड पार्टी कान्फ्रेन्स' यहाँ तेईस किलोमीटर लंबी पानी की नहर थी। इसमें कुल मिलाकर तीन हज़ार व्यक्ति काम किया करते हैं।
एक स्कूल भी इसी के अंतर्गत है। उसे भी देखा। स्कूल में अमीर ख़ुसरो, जेबुन्निसा, हाफ़िज़ और सादी के चित्र देखने को मिले। दीवारों पर टंगे थे। द्वितीय महायुद्ध के वीरों के चित्र भी लगे हुए थे।

यहाँ हमने खाना खाया। नान की बड़ी रोटी खाने को मिली। बड़ी मुलायम थी। कई दिनों के बाद भारत छूटने पर अब रोटी के दर्शन हुए थे। जी ख़ुश हो गया। चाय पीने को मिली। साथ में किशमिश भी दी गई। मैंने ख़ूब खाई। बादाम के शकल की एक नमकीन भी सामने आई। वहाँ से लगभग ढाई बजे दोपहर हमलोग वापस आए।
तीन बजने पर हमलोग फिर घूमने-फिरने गए।

एक बड़ा सुंदर म्यूज़ियम है। यहाँ अक्टूबर-क्रान्ति के पहले की हालत का दृश्य दिखाया गया। फिर उस क्रान्ति के बाद की स्थिति दिखाई गई। पहले वहाँ की स्थिति दयनीय थी। न सड़कें थीं। खेती-पाती की दुर्दशा थी। बिजली भी अप्राप्य थी। बाद की स्थिति ख़ुशहाली की तस्वीर प्रस्तुत करती है। सब तरह के सुधार किए गए हैं। शोषण समाप्त हो गया है। शिक्षा केंद्र स्थापित हो गए हैं। खेती में आमूल परिवर्तन किया गया है। जनता के स्वास्थ्य की फिकर की व्यवस्था की गई है। बेकारी समूल नष्ट कर दी गई है। बिजली का प्रकाश दूर-दूर तक पहुँचाया जा चुका है। सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था अमल में लाई गई है। इस क्रांति के बाद ही तो ताजिकिस्तान की यह रिपब्लिक बनी है। वहाँ के वीरों के चित्र देखने को मिले।
यहीं एक किताब की दुकान में गए। वहाँ संस्कृत के एक बड़े महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' का रूसी भाषा में अनुवाद देखने में आया। इस ग्रंथ के प्रणेता अभिनवगुप्त थे। यह काव्य से संबंधित पुस्तक है। इसे देखकर मालूम हुआ कि हमारे देश के साहित्य में रूसियों की गहरी रुचि है और वे लोग हमारे साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं। कभी यह सोचा भी न होगा किसी ने कि यह ग्रंथ रूसी भाषा में अनूदित भी होगा। इसका अनुवाद बड़े परिश्रम से करना पड़ा है।

फिर वहाँ से निकलकर एक चायख़ाना में चाय पी। यह चायख़ाना जनसाधारण के लिए बने हैं। तख़्त पड़े हैं। कुर्सियाँ लगी हैं। तख़्त पर साफ़-सुथरा बिछावन बिछा है। लोग आते हैं। बैठते हैं। चाय पीते हैं। नाश्ता करते हैं। दाम देते हैं। फिर चले जाते हैं। मुझे यहाँ बैठे-बैठे अपने यहाँ की सड़क के किनारे की छोटी-छोटी दुकानें याद हो आईं। उसी माहौल में हमने यहाँ चाय पी और वह नान रोटी बड़े स्वाद से खाई।
एक कृत्रिम झील बनाई गई है। वहाँ गए, उसे देखा, सुंदर थी। उसमें नाव खेने की प्रतियोगिता चल रही थी। ख़ूब खिले हुए गुलाब देखे। क़रीब साढ़े सात बजे शाम होटल वापस आए। अब भी सूरज आसमान में था। शाम हमारे यहाँ की जैसी नदारद थी। धूप चमक रही थी। अजीब-सा लगा था।

उन्नीस मई को दोशाम्बे में स्थित ताजिकिस्तान का ऐतिहासिक म्यूज़ियम देखने गए। दस बजे से लेकर ग्यारह बजे दिन तक देखते रहे। पसंद आया।
सवा ग्यारह बजे यहीं एक फ़िल्म देखी। ताजिकिस्तान के ऊपर थी। इसमें ताजिकिस्तान के बरफ़ीले पहाड़ देखे। उनके सौंदर्य से प्रभावित हुए। भेड़ों के झुंड देखे। बैजनी रंग के फूलों की बहार देखी। सेब देखे, पेड़ों से लटके बड़े-बड़े। मुँह में पानी भर आया। औरतें-आदमी उन्हें तोड़-तोड़कर टोकरियों में रख रहे थे। शिक्षा संस्था दिखाई गई थी। लड़के-लड़कियाँ और शिक्षक थे। कई कमरे थे। प्रयोगशाला दिखाई गई। अंगूर तोड़ना भी फ़िल्म में ही देखा। एक स्वास्थ्य केंद्र भी आँखों के सामने आया। बढ़िया था।

इसी फ़िल्म में नाच-गाना भी होता दिखाया गया। वहाँ की संस्कृति का प्रतिबिम्बन हुआ। यूरोपीय आधुनिकता से वह अब भी विनष्ट नहीं हुई।
औरतों को कुरता, इज़ार (पायजामा) और टोपी पहने देखकर कश्मीर याद आ गया।

इसी फ़िल्म में उत्तरी ताजिकिस्तान के फ्रेस्कोज भी दिखाए गए। बड़े ही रंगमय हैं।
नाचती हुई महिला को लँहगा लहराते देखा। अपने यहाँ की गाँव की औरतें याद आईं। यह साम्य देखकर एकता महसूस की।

कसीदाकारी का संस्थान भी प्रदर्शित हुआ। मख़मल पर काम किया जा रहा था सुनहरे तारों से। देखकर उन हाथों और आँखों की सराहना करना नहीं भूला, जो तुरत फुरत सपाटे से जादू

ऐसी कारीगरी कर देती थीं। मुग्ध होता रहा। अपने यहाँ ऐसा देखने का अवसर मुझे नहीं मिला था। मैंने तो अपने गाँव के दरज़ी को कपड़े की नाप लेने पर भी छोटा बनाते ही देखा। एक बैले देखा। याद नहीं रहा कि उसमें क्या देखा? मैंने उस समय कुछ भी नोट नहीं किया था।

इससे उसका नाम तक भूल गया।
उन्नीस मई को ही केंद्रीय फ़िरदौसी पुस्तकालय गए। बताया गया कि यहाँ बहुत किताबें हैं। संख्या शायद दो मिलियन बताई गई थी। यह तो याद है कि बहुत बड़ा पुस्तकालय है। इसमें एक अलग प्रकोष्ठ स्थापित किया गया है, जहाँ पूर्वीय देशों की प्राचीन पुस्तकों की मूल पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं। यह सन् 1928 में स्थापित किया गया था। यहाँ ही मुझे सदरुद्दीन ऐनी के प्रसिद्ध उपन्यास 'दाखुन्दा' का हिंदी-अनुवाद देखने को मिला। अनुवाद किया है राहुल सांकृत्यायन ने। पुस्तकालय औपचारिक तरीक़े से सन् 1933 में जनता के लिए खोल दिया गया था।

यहाँ फ़ारसी-अरबी और ताजिक भाषा की अत्यन्त प्राचीन पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित देखने को मिलीं। यहाँ 2000 से अधिक दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संग्रहालय है।
यहाँ की नवीं शताब्दी के तबरिस्तान का इतिहास लिपिबद्ध देखने को मिला। यह देश तब कैसपियन सागर के तट पर बसा था।

फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ का इतिहास अलबरूनी का लिखा देखा।
फ़िरदौसी की कृति, 13वीं सदी की, 'शाहनामा' देखी। इसे तीस वर्ष में लिखा गया था। यह ग़ज़नवी को जब बेंचा गया था, तब एक प्याला चाय का दाम ही मिला था। यह पुस्तक मूल 'शाहनामा' की सोलहवीं शताब्दी की प्रतिलिपि है।

इस पुस्तकालय को देखने स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री ज़ाकिर हुसैन आए थे। यहाँ के विज़िटर बुक में उनके हस्ताक्षर हैं। अन्य आए कई भारतीयों की रायें और दस्तख़त देखे। स्वर्गीय वृन्दावनलाल वर्मा के भी हस्ताक्षर देखे। कैफ़ी आज़मी, मज़रूह सुल्तानपुरी, एहतेशाम हुसेन और डी० पी० धर भी यहाँ आए थे। उन्होंने भी अपनी राय लिखी थी और अपने दस्तख़त बनाए थे।

अमीर ख़ुसरो का दीवान देखा। 'ख़मसा' एक प्रकार की उनकी शाइरी है।

फिर वहाँ से हमलोग मोटर द्वारा एक घाटी देखने गए। यह वहाँ से बहुत दूरी पर स्थित थी। सड़क ख़ूब उम्दा और चौड़ी थी। मोटरें भी बढ़िया थीं। वे चली तो चलती चली गईं और रुकी तो वहीं पहुँचकर रुकी। यह घाटी बड़ी रमणीक लगी। सैलानियों का मन-पसंद भ्रमण स्थल यही घाटी है। तमाम लोग तमाम जगह देखे। वारजोब (Varzob) नदी के दोनों ओर लोग-बाग पूरे रास्ते भर खाना बनाते और मछली मारते दिखे। महिलाएँ भी संगसाथ में कहीं-कहीं दिखीं। बच्चे और जवान भी मज़ा मार रहे थे। कहीं कोई मछली पकड़ने के लिए बध्यान लगाए बैठा दिखा। यह नदी वेगवती है। इसका पानी साफ़ और निर्मल है। इसके दोनों ओर पहाड़ हैं। ऊँचे चले गए ये सुदृढ़ प्रहरी बर्फ़ की टोपी लगाए हैं। इनमें कहीं-कहीं ग्लैशियर भी दिखाई दिए। बादल तो हर क्षण, सिर पर इन पहाड़ों के चलते-फिरते नज़र आते हैं। सड़क सीमेंट की है और वक्राकार चली गई है, मोड़ लेती हुई। सभी सैलानियों को कामकाज से फ़ुरसत थी। नदी का किनारा, किनारे पर लगे पेड़, वह भी छायादार और तब फिर कौन चूकता कि वहाँ न पहुँचता और पिकनिक न मनाता। मौसम सीने से लगा लेनेवाला था। मज़ा आ गया। इस घाटी में पहुँचकर मैं घाटी का हो गया।
हमलोग नदी के सीने पर आधी दूर तक चले गए। होटल के बड़े छज्जे पर या कहें बुर्ज पर दिन के 4 बजे भोजन किया। नीचे नदी के पानी की पायल बज रही थी। ऊपर हमारे साथी आरमीनिया के अंगूरों की बनी शराब ढाल रहे थे और मस्ती से गा-गुनगुना रहे थे। यहाँ गर्मा-गर्म भोजन मिला। फिर नानरोटी मिली। मक्खन, पनीर, खीरा, हरी धनियाँ, पालक, चुकंदर सबकुछ खाने को मिला। यूरी ने रूसी भाषा में लिखी अपनी कविता हम लोगों की प्रशस्ति में सुनाई। मुझे भी अपनी एक कविता सुनानी पड़ी। गीत था, माँझी न बजाओ बंशी। गा तो न सका पर सुना गया। अंग्रेज़ी में अनुवाद भी करता गया। दुभाषिया रूसी में अनुवाद करता रहा। फिर आग्रह हुआ तो दूसरा गीत सुनाना पड़ा। वह था 'धीरे उठाओ मेरी पालकी।' दुभाषिया थे मिस्टर सुस्कोव। हमारे साथी पं० हरिदत्त शर्मा ने विशेष ज़ोर डाला था, तब मैं सुना पाया था। वे भी आँखों से उमरख़ैयाम हो रहे थे। मैं भी पद्माकरी मनःस्थिति में था। ख़ूब मज़ा आया।

7 बजे शाम हमलोग वापस होटल आए।

फिर हम चार जने एक ओपेरा देखने गए जो 7.30 बजे से शुरू हुआ था। समझ में तो आया नहीं। लेकिन बिना समझे भी आरकेस्ट्रा सुनने में मज़ा आता रहा। एक व्यक्ति खड़ा होकर दोनों हाथ फैलाए वादक कलाकारों को इशारे से लय और ध्वनि का उतार चढ़ाव बताता जाता था। उसके हाथ भी बड़ी सतर्कता से उठते-गिरते मंद और क्षिप्र होते थे।

फिर होटल आए। सोए-साए।

बीस मई को दस बजे दिन होटल छोड़कर वक्ष घाटी (Vaksh Valley) आए। इस घाटी में बसा आधुनिक नगर नूरेक है, जो सन् 1962 में अपने इस नए रूप में अस्तित्व में आया। पहले तो यह एक छोटा गाँव ही था। इस नगर में मेयर सुकूरोफ बोइनारजाब हैं। यहाँ हाइड्रो इलैक्ट्रिक इन्स्टालेशन के उच्चतम अधिकारी हैं—मुखामीदेपेव वालीरीनि-जामोविच। इतना बड़ा नाम है कि उच्चारण करने में दिक्कत होती है और समय भी पर्याप्त लगता है। काम बड़ा है शायद इसीलिए नाम भी बड़ा है। हमारे यहाँ तो दो-दो अक्षरों के छोटे-छोटे नाम ज़ियादातर हैं। इसलिए बोलने में आसानी होती है। यहाँ बारह बरस पहले नाम-मात्र को आबादी थी। लोग भेड़ें पालते और ऊन का व्यापार करते थे। अब तो यहाँ एक हज़ार पाँच सौ मीटर की लंबाई घेरकर नई इमारतें तामीर कर दी गई हैं। अब तो चौबीस हज़ार की इसकी जनसंख्या है। यहाँ तीस स्कूल हैं। सात नर्सरी और किंडरगार्डन मदरसे हैं। पुस्तकालय भी हैं। स्टेडियम्स भी हैं। अस्पताल तो हैं ही। पैलेस ऑफ कल्चर भी है। सिनेमाघर भी हैं। व्यापार होता है। तमाम दुकानें हैं। श्रमिक लोग भी कविता और साहित्य की रचना करते हैं। पेशेवर कवि नहीं हैं। कवि और कलाकार ताजिकिस्तान के अन्य स्थानों से भी वहाँ आते हैं। मासिक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। यहाँ नूरेक से संबंधित तीन सौ पुस्तकें हैं, जिन्हें कवियों और साहित्यकारों ने लिखा है। यहाँ के लोग दूसरे नगरों के नाट्य प्रदर्शनों में जाकर भाग लेते हैं और अपनी कला को जनप्रिय बनाते हैं।

फिर हमलोग इस नगर की सोवियत के दफ़्तर गए। वहाँ चाय मिली। मिनरल वाटर मिला। हमलोगों ने पिया।

यहाँ की सोवियत, जब कमीशन के अंतर्गत निर्माण की अनुमति देती है, तब यहाँ निर्माण किया जाता है। यहाँ श्रमिकों को, कर्मकारों को खाद्य-सामग्री और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दी जाती हैं।

यहाँ की शिक्षा, सुरक्षा और स्वास्थ्य की पूरी ज़िम्मेदारी यहाँ की सोवियत लिए है। काम सुचारु रूप से चलता है। पुलिस विभाग भी यहाँ की सोवियत के अंतर्गत काम करता है।
सन् 1930 की 16वीं पार्टी काँग्रेस ने मास्को में निर्णय लिया था कि ताजिकिस्तान में हाइड्रो इलेक्ट्रिक पावर स्टेशन स्थापित किया जाए। बाँध भी बाँधे जाएँ, नदी के पानी से असिंचित भूमि को सींचने के लिए। सन् 1936 में ताजिकिस्तान से सुझाव दिए गए इस संबंध में।

यहाँ गैस भी घरों में ईधन के लिए मिलती है। नगर की सफ़ाई का उम्दा प्रबंध है। कोई संक्रामक रोग न फैले, इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इस काम के लिए 6 डॉक्टर तैनात रहते हैं। 25 आदमी माध्यमिक मेडिकल योग्यता के काम करते हैं। 24 आदमी यहाँ की सफ़ाई का प्रबंध करने में जुटे रहते हैं। यहाँ का जल-कल विभाग अपने कर्मचारियों की नियुक्ति करता है और वहीं से उसे सफलतापूर्वक चलाकर पानी दिया करते हैं।
हर चौथे साल यहाँ की 81 चुनी हुई डिपुटी सोवियतें बनती हैं।

वयस्कता की आयु 18 वर्ष की है।
पिछले चुनाव में 12000 लोगों ने मतदान दिए।

यह नूरेक नगर 300 मीटर की ऊंचाई पर बसा है।
कृत्रिम झील 10 किलोमीटर लंबी है।

लगभग नौ हज़ार हेक्टर भूमि की सिंचाई होती है।
यहाँ से ही अल्युमिनियम संस्थान को बिजली दी जाती है। दूसरे औद्योगिक संस्थानों को भी यहीं से बिजली पहुँचाई जाती है।

सन् 1962 से सन् 1966 तक इस नगर के निर्माण और यहाँ की सड़कों के बनाने का काम चल रहा था। पहला विद्युत् संचार मई सन् 1973 में शुरू हुआ था।
वक्ष नदी लगभग 400 मीटर लंबी है।

नूरेक सागर (कृत्रिम झील) में हमें मोटर बोट से घुमाया गया। काफ़ी दूर तक हम गए।

यहाँ से बाँध बाँधने के पूरे क्षेत्र को हमने देखा। इसका बेस 1600 मीटर है और शिखर 1800 मीटर का है।

यहीं होटल में हमने खाना खाया।
फिर 7 बजे शाम दोशाम्बे वापस पहुँच गए।

21/5 को दोशाम्बे स्थित ताजिकिस्तान के लेखक संघ गए। साढ़े दस बजे से पौन बजे तक यहाँ रहे।
यहाँ गुलरुखसारा व गुलचेहरा नाम की दो कवयित्रियों से भेंट हुई। रुखसारा युवा पीढ़ी की हैं। गुलचेहरा अधिक उम्र की हैं।

मीरशकर लंबे क़द के पुरानी पीढ़ी के प्रौढ़ साहित्यकार हैं। मोमिन कनपारा कवि हैं। इन्होंने लेनिनग्राद पर नए शिल्प की एक कविता लिखी है। यह ईरान भी हो आए हैं। वहाँ इन्होंने पी०ई०एन० के जलसे में शिरकत की थी। इन दोनों से भी वहीं भेंट हुई।
मिखाइल मीरशकर ने लेखक संघ के बारे में बहुत-सी बातें बताई। उन्होंने कहा कि उनके लिए भारत जाना-पहचाना देश है। उनके देश से और भारत से बहुत पुराने व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। उनका देश भारत के प्रति अत्यंत कृतज्ञ है कि उनके यहाँ की काव्य-पुस्तकें बंबई में मुद्रित और प्रकाशित हुई तब, जब उनके यहाँ छापाख़ाना नहीं था। उनके यहाँ अमीरख़ुसरो देहलवी की शताब्दी मनाने की योजना बनी है और वह बड़े धूमधाम से मनाई जाएगी। महाकवि ग़ालिब और कश्मीर के कवि ग़नी उनके यहाँ भी प्रख्यात हैं। इन कवियों की भाषा इनके देशवासियों को समझ में आ जाती है, क्योंकि इन कवियों की भाषा इनके देशवासियों की भाषा के निकट पड़ती है। स्वर्गीय मोहम्मद इक़बाल भी इनके यहाँ पढ़े जाते हैं।

मीरशकर ने आगे बताया कि उनके यहाँ का इतिहास हज़ारों साल पुराना है। वह गौरवपूर्ण है और संघर्षमय भी है। उनके यहाँ 180 साल तक समानी स्टेट रही। यह रेनेसाँ का वक़्त था। परंतु दुश्मनों के आक्रमण से यह स्टेट ख़त्म हो गई, विभाजित हो गई। लोग-बाग आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगे। इस समय की सभ्यता का कवि ताजिक के फ़ारसी साहित्य का पिता अबूअली था। इनकी कविता में दर्द व्यक्त हुआ है।

फिर उन्होंने और बताया कि अक्टूबर-क्रांति के पहले उनके यहाँ पाँच प्रतिशत शिक्षा थी। क्रांति के बाद शिक्षा सबको उपलब्ध हुई है। उनके यहाँ लोग बड़े भावुक और संवेदनशील हैं। उनके यहाँ के साहित्य के संस्थापक रुदाकी हुए हैं। उन्हें ईरान भी स्वीकार करता है। अब वे लोग हज़ारवें साल की जुबली मनाने वाले हैं। नई कविता के संबंध में उन्होंने कहा कि वह मुक्त-छंद में लिखी होती है। लेकिन वह जनता में लोकप्रिय नहीं हो सकी। उनके बाद श्री मोमिन कनयात ने बताया कि वह युवा कवि हैं। मास्को में एक लाख की जनता, टिकट ख़रीदकर कवियों की कविताएँ सुनती है। वे कवि जनता के विरुद्ध नहीं होते। कोई कवि किसी शेर या पशु को कविता सुनाकर जन-जीवन से विमुख होने का दम नहीं भरता। उनके यहाँ की जनता कविता पसंद करती है और कविता के 'वादों' से घबराती है। हाल में दस दिन तक काव्य-समारोह मनाया गया था। इस समारोह में विभिन्न सोवियतों से आए हुए चौंतीस कवियों ने काव्य-पाठ में भाग लिया था। वे जगह-जगह गए भी थे और वहाँ उन्होंने जनता को अपनी कविताएँ सुनाई थीं। जनता उनकी काव्य-पुस्तकें पढ़ने के लिए ललकती रहती है।

मैं तो इसके पहले यही समझता था कि हम लोग ही अपने देश में कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया करते हैं और कहीं दूसरे देश में ऐसे व्यापक स्तर पर ऐसे आयोजन होते ही नहीं। श्री मोमिन कनयात के मुँह से इसके विपरीत बात जानकर बेहद हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह जानकर दूनी-चौगुनी ख़ुशी और हुई कि वहाँ की जनता काव्य-संग्रह ख़रीदती और पढ़ती है। हमारे यहाँ की जनता सम्मेलनों में काव्य-पाठ तो सुन लेती है, परंतु दाम लगाकर काव्य-संग्रह नहीं ख़रीदती। यह दुर्भाग्य की बात है।
इसके उपरांत हम अपने होटल आए। वहाँ रहे। डिनर खाया।

फिर ढाई बजे दिन हम ताजिकिस्तान की विज्ञान अकादमी के प्राच्य अध्ययन संस्थान गए। वहाँ के सहायक डायरेक्टर श्री सैयद मोरादोव हैं। वह दर्शनशास्त्र के डॉक्टर हैं। वहाँ के भारत और पाकिस्तान विभाग की ज़िम्मेदारी श्रीमती शरफ़जान पोलोतावा पर है। वह भाषा-विज्ञान की विशेषज्ञ हैं। उन्होंने उर्दू और फ़ारसी भाषाओं पर अनुसंधान किया है।
कामरेड गुफारोव भी उन्हीं की विद्वत्ता और विशेष योग्यता के हैं।

मालूम हुआ कि अध्ययन-संस्थान की स्थापना अप्रैल, सन् '70 में हुई थी। इस संस्थान में 69 व्यक्ति काम में लगे हैं। इनमें से कुछ टेकनिकल योग्यता के आदमी हैं, कुछ रिसर्च स्कॉलर हैं।

इस संस्थान के 6 भाग हैं। एक भाग अफ़गानिस्तान से संबंधित है। दूसरा भाग ईरान से, तीसरा भारत और पाकिस्तान से, चौथा अरब देशों से, पाँचवा टेक्सटालोजी से और छठवाँ सभी प्राच्यलिपियों से संबंधित है। इसका सोवियत भूमि में तीसरा स्थान है। यहाँ लगभग बारह हज़ार पुस्तकें हैं। दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ हैं। इसने अबतक किताबों की सूची चार भागों में छापी है। यहाँ कामरेड उसमान अकबर से संबंधित विभागों में काम करते हैं। उर्दू में यह महत्त्वपूर्ण काम चालू है। यह उसमान साहब एक साल तक विशाखापट्टनम में रह आए हैं। यह हम लोगों से उर्दू में बोलते रहे।

हिन्दी में यहाँ काम करते हैं श्री उसमान मुमताज, यह लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के स्नातक रहे हैं। सन् 1968 में यहाँ आए हैं। भाषा-विज्ञान में यह काम करते हैं। यह यहाँ हिंदी भाषा के क्रियापदों का ताजिक और तुर्की भाषाओं के क्रियापदों से तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं। मुझे इनसब लोगों से मिलकर भारी प्रसन्नता हुई।

फिर वहाँ से हमलोग 3.30 बजे दिन पायनियर पैलेस देखने पहुँचे। वहाँ लड़के लड़कियों ने हम लोगों का स्वागत किया। हमने उनमें रुचि दिखाई। नतीजा यह हुआ कि वे और हम आत्मीय हो गए। उन्होंने एक गीत भी गाया। पायनियर बच्चे-बच्चियाँ हम लोगों के देश के बालचरों से ज़ियादा ज़िम्मेदार लगे। अभी से समाजवादी उद्देश्य की महत्ता समझते हैं और इसके लिए अपना समय-श्रम सहर्ष देते हैं।
वहाँ से होटल आए। रात 12 बजे श्री ग़ुलाम रब्बानी ताँबा साहब ने अपने होटल के कमरे में हमें फोन करके बुलाया और मीरशकर के दिए हुए पेय से हमारा अभिनन्दन किया। हम लोग दिलचस्प बातें करते रहे और एक-दूसरे के चेहरे देखते रहे। किसी के मुँह पर दुनियाई उदासी न थी। सब हँसमुख और प्रसन्न थे। रात में हमलोग बैले की तरह खिल उठे थे।

मैंने दोशाम्बे पर छोटी-सी एक कविता लिखी
हँसती पंखुरियों की बस्ती

खिले गुलाबों की
दिलकश देखी

दोशीज़ा नगरी दोशाम्बे की

22/5 को हमलोग 10 बजे दिन दोशाम्बे से मास्को के लिए हवाई जहाज़ पर उड़े। पाँच घंटे में मास्को पहुँचे। फिर रूसिया होटल में ठहरे। मैं बारहवें खंड के कमरा नं० 738 में श्री हरिदत्त शर्मा के साथ ठहरा। आज कहीं नहीं गए। कमरे में श्री सुरेंद्रकुमार आए। वह वहाँ अनुवाद का काम करते हैं। युवा हैं। सहृदय हैं। उनसे बातें होती रहीं। उन्होंने भी मास्को के वातावरण की और वहाँ के लोगों की तारीफ़ की। खुले दिल से की। उनके कहने में कोई बनावटी भाव न था। उन्होंने बताया कि उनकी लड़की रात 12 बजे भी अपने कॉलेज के समारोह से अकेली वापस लौटने में कोई ख़तरा नहीं महसूस करती। वहाँ के लोग बेहूदा हरकतों के आदी नहीं हैं। वहाँ की लड़कियों की आबरू पर आँच नहीं आने पाती। उन्होंने मुझे हर तरह की सुविधा देने का आश्वासन दिया और चाहा कि मैं कुछ दिन और वहाँ उनके घर में रहकर बिताऊँ और मास्को को पूरी तरह से पहचान लूँ। पर मैं इसके लिए तैयार नहीं हुआ। मुझे अपना वीसा बनवाना पड़ता और यह बात इस प्रोग्राम के बाहर की हो जाती। मैं न रुका।

वहीं उसी कमरे में 15-17 साल से मास्को में रह रहे मधु जी भी आए। उनसे बातें होती रहीं। वे भी ख़ूब बात करते हैं। जो कुछ कहते हैं, साफ़ कहते हैं। छिपाते कुछ भी नहीं। मास्को की बातें हुईं। उन्होंने भी कुछ ऐसा नहीं बताया कि वहाँ हर आगन्तुक के पीछे 'ख़ुफिया' लगा दी जाती है और लोग बात करते डरते हैं। मैंने पूछा भी। पूछने पर भी यही कहा कि ऐसी बात नहीं है। ऐसा होता तो वह क्या, कोई भी भारतीय वहाँ रह ही नहीं सकता। मिलने-जुलने में रोक-टोक नहीं है। बात करने की मनाही नहीं है। कर्तव्य कीजिए, खाइए-पीजिए और अच्छी ज़िंदगी बिताइए। कविता के बारे में मैंने उनसे बातें की। उन्होंने बताया कि रूसी लोग पुश्किन को बहुत बड़ा कवि मानते हैं और उनकी कविता पर तो जी-जान से फ़िदा हैं। पुश्किन रूसी भाषा का माहिर कवि है। काव्य का सौंदर्य उसकी कविता में भरा पड़ा है। जब मैंने आधुनिकता की बात चलाई, तो उन्होंने भी बताया कि नए कवि आधुनिकता का काव्य लिखते हैं, पर जनता आधुनिकता से प्रभावित नहीं होती। आधुनिकता से और प्रतिबद्धता से जानी दुश्मनी है। इसीलिए समाजवादी कवि आधुनिकता के व्यक्तिवादी अथवा अहंवादी कथा और शिल्प को नहीं अपनाते।

श्री सुरेंद्र कुमार ने यह बताया कि मास्को में पेट्रोल, गैस, खाने की चीज़ें, बच्चों की चीज़ें और मकान बहुत सस्ते हैं। ट्रांसपोर्ट की सहूलियत ख़ूब अच्छी है। मेडिकल विभाग बड़ा

सक्रिय और कर्तव्यनिष्ठ है। बड़ी जल्दी डॉक्टर मिल जाता है। फ़ोन होते ही 15 मिनट के अंदर वह आ जाता है। पूरी लगन से काम करता है।

रात होटल में ही खाना हुआ। सोए।
23/5 को साढ़े दस बजे दिन हम लोग टैक्सियों से विश्व के महान् उपन्यासकार लियो तालस्ताय का स्मारक देखने के लिए रवाना हुए। वह स्थान मास्को से 180 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। रास्ते में उससे कुछ पहले तूले शहर मिला। वह अच्छा-ख़ासा शहर दिखाई दिया। सड़क से देखा तो दोनों तरफ़ ऊँचे-ऊँचे पक्के मकान दिखे। सड़क भी साफ़-सुथरी और काफ़ी चौड़ी थी। ट्राम चलती नज़र आई। एक महिला को चलाते देखा। मुझे तो उसे देखकर लखनऊ के हज़रतगंज की याद आ गई।

मास्को से यसयाना पोलियाना तक साँप के पेट की तरह चिकनी सपाट एक जैसी, पक्की, चौड़ी सड़क अबाध रूप से सरकती चली गई है। कहीं ऊँची उठती है, तो कहीं नीचे झुकती है। बहरहाल बिना अंजर-पंजर हिलाए वह यात्रियों को निकल जाने देती है। इसके दोनों तरफ़ दूर-दूर तक, हाल की उगी हरी फ़सल की मख़मली बिछावन, खेतों में आर-पार बिछी दिखी। खेतों में मेड़ तो कहीं दिखी ही नहीं। उन्हें ट्रैक्टर से जोता बोया जाता है। हाँ, कई जगह मुझे 10-12 महिलाएँ झुके-झुके निराई करती हुई नज़र आईं। उनके कपड़े न फटे थे न गंदे। वह शरीर से भी पुष्ट और स्वस्थ थीं।
हवा बढ़िया थी। मोटर की खिड़की खोले हवा का संस्पर्श करते हुए हम चले जा रहे थे। आँखों में वहाँ का पूरा-पूरा दृश्य समाया चला जा रहा था। सड़क के दाएँ-बाएँ खेतों के किनारों पर, थोड़ी-थोड़ी दूर पर रहायसी पक्की 'काटैजेज' दिखीं। चूँकि सर्दी बहुत पड़ा करती है और बर्फ़ गिरती है, इसलिए वे झोपड़ियाँ सब तरफ़ से बंद और सुरक्षित दिखीं। लेकिन कई-कई खिड़कियाँ और द्वार थे उनमें। शायद दोहरे-दोहरे शीशे लगे थे उनमें। ऊपर ढाँचा इनका लकड़ी का बना था। इनके पास व इर्द-गिर्द सेहेन की कुछ भूमि पड़ी थी, जिसमें पेड़-पौधे लगे दिखे। वहीं कहीं-कहीं मुझे मुर्गियाँ घूमती नज़र आईं। लेकिन उस समय मुझे इन झोपड़ियों में आदमी का पुतला तक नहीं दिखाई दिया। सम्भवतः तब सभी व्यक्ति काम-काज पर गए रहे होंगे। बच्चे पढ़ने गए होंगे। सब झोपड़ियाँ निश्चय ही बंद दिखी थीं। उनमें भीतर बाहर आदमी के साँस की कोई हरकत नहीं नज़र आई। हाँ, जब शाम को लौटे और

फिर उन्हें देखते हुए निकले, तो खिड़कियों से भीतर जलती हुई बिजली का प्रकाश दिखाई अवश्य दिया था। इससे समझ सका था कि उनमें लोग-बाग अपने परिवार के साथ रहते हैं।

खेतों में हमारे यहाँ की तरह जानवर छूटे हुए नहीं दिखे। खेतों के इधर-उधर मुझे कोई तार खिंचे हुए नहीं मिले। किसी भी तरह का कोई ख़तरा फ़सल के चर जाने का नहीं था। हमारे यहाँ खेत की रखवाली करनी पड़ती है। ऐसी कोई बात मैंने वहाँ नहीं देखी।
इतने बड़े रास्ते में आते-जाते में मुझे एक जगह अपने यहाँ का धैर्य-धन जानवर गदहा वहाँ दिखाई दे ही गया। समाजवादी देश में उसका वहाँ होना इस बात का प्रमाण था कि वह मूर्खता का अवतार ही था।

एक जगह एक बूढ़ा घास लादे घोड़े पर सवार आता दिखा। एक बालक अपनी पीठ पर घास का पुलंदा लटकाए राह चलते दिखा। एक जगह एक बूढ़ी औरत खेत में गाय का दूध बाल्टी में दुहती हुई नज़र आई। बैल तो एक भी न दिखाई दिया। अन्य पशु भी वहाँ मुझे नज़र नहीं आए।
यासयाना पोलियाना का रकबा बहुत बड़ा है। लंबे बर्च के पेड़ सघन संख्या में लगे हैं। फर के पेड़ भी हैं। नाला भी दिखाई दिया। जंगल है वहाँ। इसी के अंदर दूर चलने पर तालस्ताय का एक मौरूसी घर मिला। उसी से हटकर, क़रीब में ही उनका अपना रहायशी मकान है। पूर्वजों के घर के अंदर मैं नहीं गया। उन्हीं के मकान में मैं गया। बाहर लंबे-चौड़े जूते अपने दोनों पैरों में बाँधने पड़े थे। उन्हें पहनकर ही अंदर चलकर प्रत्येक कमरा देखते रहे थे हमलोग। सीढ़ी थी। उससे चढ़कर ऊपर के कमरों में गए थे। फ़र्शों पर काठ जड़ दिया गया है। उसी पर होकर चलना पड़ता है। कहा गया कि यह मकान उसी हालत में ज्यों-का-त्यों अब भी है, जैसा तालस्ताय के ज़माने में रहा था। उनकी प्रत्येक चीज़ उसी जगह रखी है, जहाँ जब-तब रखी थी। दीवारों पर उनके और उनके तमाम कुटुम्बियों के फोटोज टंगे हैं। कोई किसी उम्र का है, कोई किसी उम्र का। कोई किसी अवसर का है। कोई किसी अवसर का। बड़े भव्य हैं ये चित्र। सोफिया उनकी पत्नी थीं। उनके भी अनेकों चित्र थे। वह जवानी में बड़ी सुंदर दिख रही थीं। तालस्ताय की चाची ने उन्हें और उनके बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा किया था। वह अपनी चाची को बहत मानते थे। उन्हीं के साथ रहते थे। चाची का कमरा अलग था। अन्य लोगों के कमरे भी अलग थे।

सब सुसज्जित हैं। हरेक में हरेक रहनेवाले व्यक्ति की तमाम चीज़ें यथास्थान रखी हैं। उनके कपड़े टंगे हैं। हाथ की घड़ियाँ टंगी हैं। घुड़सवारी का सामान, जूते इत्यादि भी सुरक्षित हैं। जो उपहार तालस्ताय को समय-समय पर लोगों से मिले थे, वे भी वहाँ मौजूद हैं। पुराने ढंग का ग्रामोफ़ोन भी उनमें से एक है। एक बड़ी-सी घड़ी एक जगह रखी है। उन कमरों में वहाँ फर्नीचर भी हैं, जो तब वहाँ था। हाँ, कुछ-न-कुछ मरम्मत कर दी जाया करती है, ताकि वह नष्ट होने से बचा रहे।
तालस्ताय के पुत्र ऐण्ड्री ने अपनी माँ की मूर्ति बनाई थी। वह वहाँ है। उनका बाजा पियानो भी है। वह पुश्किन के दूर के रिश्तेदार होते थे।

एक अलग प्रकोष्ठ उसी मकान में इसलिए था कि वहाँ तालस्ताय आए हुए व्यक्तियों से गंभीर बातें करते थे। वहीं वह अपनी रचनाएँ पढ़ते थे।
उन्होंने सन् 1895 में अपने उपन्यास 'रिसरेक्शन' के परिच्छेद एंटेन चेखव को पढ़कर सुनाए थे।

वह रूसी लोक-संगीत अत्यधिक पसंद करते थे।
दो वर्ष की उम्र में उनकी माँ मरीं।

छः वर्ष की उम्र में उनके पिता चल बसे।
इनकी पत्नी सोफिया ने इनके उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' की पाण्डुलिपियाँ सात बार हाथ से लिखी थीं।

इनका उपन्यास 'रिसरेक्शन' दस वर्ष में लिखा गया था। छः बरस में लिखा गया था 'युद्ध और शांति'। चार साल में पूरा हुआ था लोकप्रिय उपन्यास 'अन्नाकरीना'।
बताया गया कि उनके इस मकान में उनकी 22 हज़ार पुस्तकें हैं। इन सबको उन्होंने पढ़ा था। तालस्ताय ज़बरदस्त पढ़ाकू थे। वह कई भाषाओं के ज्ञाता थे।

वह अपने यहाँ के किसानों और मज़दूरों को बहुत प्रिय थे। वे उनका बहुत आदर करते थे। वे लोग अकेले और संगीसाथियों के साथ तालस्ताय से अकसर मिलने, बातें करने, अपनी

समस्याएँ बताने और उचित सलाह लेने आते थे। तालस्ताय भी उनसे घिरे रहने में अपने को धन्य समझते थे।

मुझे यह सब देखने-सुनने के बाद महसूस हुआ कि तालस्ताय एक बड़े ज़मींदार क़िस्म के शिक्षित बौद्धिक व्यक्ति थे और उनकी रुचि साहित्य में थी ही। अपने समय को वह अच्छी तरह से परखते थे। तब चर्च और बड़े भू-स्वामियों का युग था। वहाँ के खेतिहर शोषित थे। जाबिन के भौतिक मूल्यों का पालन नहीं होता था। स्त्रियाँ पति की दासियाँ थीं। शिक्षा अल्पतम थी। विकास और निर्माण न्यूनतम था। दिल के सहृदय होने की वजह से तालस्ताय जन-सम्पर्क से जनवादी उपन्यासकार बने और भू-स्वामियों की पोलें खोली। उनके सजीव और सटीक चित्र खींचे। वहाँ की किलबिल करती जनता भी अपने पूरे परिवेश के साथ सटीक व्यक्त हुई है उनके उपन्यासों में। जीवन की जीवंत और गर्हित दोनों ही झाँकियाँ मिलती हैं। तालस्ताय जनता से प्रतिबद्ध होते चले गए। वह समाजवाद से प्रतिबद्ध नहीं थे। उनकी विचारधारा सुधारवादी थी। वह आदर्शवादी थे। तभी तो वह अंत में घरबार छोड़कर चले गए और एक स्टेशन में अनजान मर गए। उन्हें उस जीवन से घृणा हो गई जिसे वह जीते आए थे और जिसे वहाँ की जनता जीने के लिए विवश थी। उनके लिए कोई दूसरा रास्ता ही नहीं बच रहा था। वह सक्रिय रूप से राजनैतिक चेतना के आदमी न थे। भावुक थे इसलिए किसी को मजबूर नहीं कर सकते थे कि वह लाज़मी तौर से अच्छा जीवन जिए और शोषण न करे। वह समाजवादी थे। उनकी मानवता लाचार मानवता थी। वह क्रान्तिकारी कार्यक्रम से उद्भूत और संवर्धित मानवता नहीं थी।

उन्होंने अपनी वसीयत में यह लिखा था कि उनकी क़ब्र पर न तो पत्थर लगाया जाए, न उसे पक्का बनाया जाए। वह उन्हीं की मनोकामना के अनुसार आज तक मिट्टी की साधारण-सी बनी है। उसके चारों तरफ़ लंबे बर्च के पेड़ खड़े हैं।

यहाँ का सारा प्रबंध सरकार करती है। एक युवती अंग्रेज़ी में यहसब बताती थी। उसे हरेक बात जैसे कंठस्थ थी। हमारे साथ के सहयोगी श्री सहालनवीस ने उससे कई बातें पूछीं, जिन्हें वह बता सकी। तालस्ताय अपने अंतकाल से पूर्व जो पुस्तक पढ़ रहे थे, उसका वह पृष्ठ भी उसने बता दिया। मैं तो चकित रह गया। मैं उस युवती का नाम भूल गया हूँ। फिर भी उसके प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि छुट्टी के दिन भी अपने घर से आकर हम लोगों के साथ वहाँ गई और घंटों चक्कर लगाती रही और तालस्ताय के विषय में पूरी जानकारी देती रही।

उसने हमलोगों से पूछा कि तालस्ताय हम लोगों को बहुत प्रिय हैं क्या? तो हम लोगों ने उसे बताया कि वह बहुत पहले से हमारे देश में पहुँचकर प्रिय हो चुके हैं। हमारा देश भी खेतिहर देश है। इसलिए भी तालस्ताय हमारी जनता को प्रिय हैं। वह भी तो खेतिहरों के कथाकार हैं। धर्म हमारे यहाँ भी बुरी तरह से अनपढ़ जनता को जकड़े है। इसलिए भी धर्म से उद्धार पाने के लिए भी हमारे यहाँ तालस्ताय के उपन्यास कई पीढ़ियों से पढ़े जाते हैं। उस युवती को संतोष हुआ। उसने फिर पूछा कि क्या भारत में दास्तोवस्की के उपन्यास नहीं पढ़े जाते? क्या वह उपन्यासकार लोकप्रिय नहीं है? हमने बताया कि दास्तोवस्की युवा पीढ़ी को प्रिय हैं। पुरानी पीढ़ी के भारतीयों में वह प्रिय नहीं हो सके। लेकिन हमने इस उपन्यासकार की महत्ता स्वीकार करते हुए यह भी बताया कि हम अभी हाल में ही तो इस उपन्यासकार के म्यूज़ियम को देखकर यहाँ देखने आए हैं।

इस स्थान में लोगों की भीड़ लगी रहती है। स्थल भी रम्य है। एक झील है। दर्पण की तरह निर्मल उसमें चार बतख़ें तैर रही थीं। वे बिलकुल दुग्ध धवली थीं। मुझे तो कलहंस याद आ गए थे उन्हें देखकर। न धूल है कहीं-न धुआँ। न शोर न गुल। बाहर होटल है। एक बुकस्टाल भी था। वहाँ इस स्थान से संबंधित चित्र और पुस्तकें भी मिलती हैं। रूसी भाषा में हैं। अंग्रेज़ी में भी हैं। लोग लेते हैं, पैसे देते हैं और प्रसन्न प्रसन्न वापस जाते हैं।
हमने यह स्थान पौने आठ बजे छोड़ा। रास्ते में कई घंटे लगे। रात ग्यारह बजे होटल में सोए। खाना वहीं से शाम को चलने से पहले खा आए थे। भूख न थी। इससे होटल में डिनर नहीं लिया।

24/5 का दिन हमें मिला था कि हमलोग मास्को में ख़रीद-फ़रोख़्त कर लें। हमने यही चाहा था। यही हुआ भी। परंतु पानी बरसने लगा। मैंने और ताबा साहब ने श्री आर०एन० व्यास के साथ कुछ दुकानें देखीं। बच्चों की मशहूर दूकान में भी गए। बच्चों के साथ खिलौनों, कपड़ों, तमाम तरह-तरह के सामान से वह खचाखच भरी थी। सब तरह की भीड़ थी। ठेलमठेल थी। हम लोगों को ख़रीदते देखते रहे। अच्छा लगा कि समाजवादी शहर में बच्चों के प्रति इतना ध्यान तो दिया जाता है। हम अपने बच्चों की ओर वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रखते जो हमें रखना चाहिए। हम उन्हें अक़्ल से ख़ारिज समझते हैं। हम उनकी भावनाओं की क़तई परवाह नहीं करते। हम उन्हें बकरी के बच्चों की तरह रखते हैं बंदरों की तरह मारपीट से सीधा करते हैं। उन्हें सताते हैं और अपनी तरह बनाने का धर्म निबाहते हैं। हम यह नहीं देखते कि उसकी

रुचि किस तरह की है? इसका परिणाम यह होता है कि बच्चा न अपने परिवेश से जुड़ पाता है; न हमसे आत्मीय हो पाता है, न उसकी प्रतिभा का विकास होता है, न वह देश को अपना देश समझता है। वह तो वैयक्तिक इकाई बनाकर अपने स्वार्थ का जीवन जीने के लिए तैयार भर कर दिया जाता है। खिलौने निर्जीव अवश्य होते हैं, परंतु वे बच्चों की प्रवृत्तियों को संस्कार देते हैं और अपने माध्यम से पूरे देश के परिवेश से जोड़ते हैं और उनमें देश-प्रेम की नींव डालते हैं। खिलौने बेकार नहीं होते। निर्जीव होकर भी वह सबसे अधिक ममता और प्यार देते हैं बच्चों को। बेचारे बालक की हरतरह की गुस्ताख़ी बरदाश्त करते हैं। जहाँ फेंक दिए गए पड़े रहते। तोड़ दिए गए तो उफ़ तक नहीं करते। फिर उठा लिए गए तो फिर जी उठते हैं। उसी दिल से बच्चों को बहलाते हैं, जिस दिल से वह पहले-पहल बहला सके थे। उनका स्नेह कम नहीं होता। मैंने भी कुछ चीज़ें ख़रीदी। फिर शाम को 6 बजे होटल में नोबस्ती न्यूज़ एजेन्सी वालों की तरफ़ से हम लोगों का डिनर था। मैं देर से पहुँचा, पानी बरस रहा था। दूकान में सौदा लेने में देर हो गई। फिर टैक्सी न मिल सकी। एक उदार रूसी ने हमें भीगता देखकर हमपर कृपा की और हमें होटल तक छोड़ गए। हम उसे किराया देने लगे, तो उसने नहीं लिया। शायद वह हमें भारतीय समझकर हमसे सहृदयता व्यक्त कर रहा था। हम उसके आभारी हुए। जब डिनर की मेज़ पर पहुँचे, तो कुछ लोग चले गए थे। हमने डिनर खाया। बातें की। यह वहाँ से प्रस्थान की बेला थी। रात को ही होटल से मास्को के हवाई अड्डे पर पहुँचना था, इसीलिए आख़िरी बार जी भरकर सब को देख लेना चाहते थे। फिर आने का अवसर मिले न मिले। श्री सुरेंद्र कुमार थे। पं० हरिदत्त शर्मा वहीं उनके यहाँ रुककर पोलैंड और पूर्व जर्मनी जाने का प्रोग्राम बनाए थे। इससे वह उधर उनके यहाँ गए और हमलोग कारों में बैठकर हवाई अड्डे गए। रात में वहाँ वायुयान से उड़कर सबेरे पहर दिल्ली पहुँच जाना था। 25/5 तक हम वहाँ रह सकते थे, पर 26/5 को वहाँ से कोई हवाई जहाज़ दिल्ली न जाता था, इसलिए 24 और 25 मई के बीच की रात को ही हम वहाँ से चलते कर दिए गए।

हमारा यान सीधे दिल्ली न जा सका। मौसम ख़राब था। धूल-धुन्ध छाई थी दिल्ली के आसपास कि उसका वहाँ उतरना असंभव था। इसलिए दिल्ली के पहले ही उसे आदेश हुआ कि वह वहाँ न आए। मरता क्या न करता। चालक उसे कराँची हवाई अड्डे पर लाया। वहाँ हम उतरे। एक बड़े से हाल में ठहरे रहे। चाय-पानी का प्रबंध भी न था वहाँ। हमारे यान की ओर से भी प्रबंध किया जाना जल्दी में असंभव था। वह लोग कर ही रहे थे कुछ-न-कुछ इंतिज़ाम कि एक घंटा में सूचना आ गई कि दिल्ली साफ़ है चल दो। हम ख़ुश हुए। सब फिर उड़े और दिल्ली में आ धरे सकुशल। वहाँ संबंधी आए थे। उन्होंने राहत की साँस ली। फिर

हमने मातृभूमि के दर्शन किए और सबसे मिले। यह 25/5 याद रहेगी विशेष रूप से कि इस दिन हम कराँची के हवाई अड्डे पर उतरे थे, जहाँ हम दुश्मन थे। इस दिन हम वहाँ से दिल्ली सही सलामत आ गए। इस दिन हमने एक ऐतिहासिक यात्रा समाप्त की थी और अपने देश के प्रति अधिक कर्तव्यनिष्ठ होकर लौटे थे। मैं कई दिन तक दिल्ली में ही अपने दामाद के यहाँ रहा। 27/5 को प्रेस कांफ्रेंस हुई। उसमें अंग्रेज़ी में अपनी बात कही गई। मैंने हिंदी में अपने ढंग से वह सबकुछ संक्षेप में कहा, जो मुझे कहना था। मैंने एक लेख भी लिखा 'समाजवादी समाज में लेखक का दायित्व।' इसे मैंने 'सोवियत भूमि' में दिया। यह लेख 'जनयुग',

'जनशक्ति', 'आज' आदि कई जगहों के अख़बारों में छपा।
आगरा गया। वहाँ भी अपनी इस यात्रा का विवरण सुनाया।

फिर अपने शहर बाँदा आया। यहाँ भी एक सभा में मैंने अनुभव सुनाए। यही सब बातें अपने लोगों को बताईं, जो बातें मैंने इस सफ़रनामें में लिखी हैं। प्रश्नों के समय लोगों ने मुझसे पूछा कि क्या मैं रूस में किसी नागरिक के घर गया और उसका घरू-पारिवारिक जीवन देखा और यह जानने का प्रयास किया कि गृहस्थी कैसे चलती है? मैंने उत्तर में कहा कि यह तो मैंने नहीं किया। हमारे प्रोग्राम में यह नहीं था। मैं लोगों की इस जिज्ञासा को समझता हूँ। ऐसा प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है। इसका उत्तर साक्ष्य-सहित मिलना चाहिए था। मैं न दे सका। इसका दोषी मैं नहीं, वह न्यूज़ एजेंसी है, जिसने हमारी यात्रा का प्रोग्राम बनाया था। हो सकता है कि यदि हम ज़ोर देते और कहते, तो वह हमें किसी भी नागरिक के घर ले जाते और उसका घरू जीवन दिखाते। किंतु इतना कुछ देखना-दाखना था कि इस ओर ध्यान ही नहीं गया और यह जानकारी न हो सकी। लेकिन एक बात इस संबंध में कह दूँ, आवश्यक है।

मैं जानता हूँ कि कोई व्यवस्था क्यों न हो, सबकुछ पूरा-का-पूरा जीवन व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसकी वजह यह है कि लोग-बाग अभी भी अपने दैनिक घरू जीवन में अपने पहले के संस्कारों से लिप्त रहकर ही उन्हीं के मुताबिक अपना आचरण करने के अभ्यस्त हैं। पहले के संस्कार जल्दी नहीं जाते। वे टूटते हैं, पर कई दशकों में। इसलिए मैं मानकर चलता हूँ कि रूसी नागरिक का घरेलू जीवन वैसा ही न होगा, जैसा रूस का बाहरी जीवन जैसे मैंने वहाँ देखा है, लेकिन इससे रूस की समाजवादी व्यवस्था को बुरा नहीं कहा जा सकता। वह व्यवस्था भरपूर प्रयास करती रहती है कि प्रत्येक नागरिक का घरेलू जीवन भी सुखी और

सम्पन्न हो। तभी तो अब वहाँ आवश्यक वस्तुएँ सुलभ कर दी गई हैं। रहने के लिए मकान दिए जा रहे हैं। सबको काम दिया जा रहा है। सबके स्वास्थ्य की देखरेख की जा रही है। बच्चों की पूरी तरह से निगरानी की जा रही है। बुढ़ापे में पेंशन दी जाती है। बीमारी में दवा। और जहाँ तक सवाल है मियाँ बीवी का, वह भी अपनी ज़िम्मेदारियाँ समझते हैं और पारस्परिक व्यवहार में एक-दूसरे का ख़याल रखते हैं। इस पर भी अगर न पटे, तो तलाक़ ले लें और अपना घरेलू जीवन अपनी स्वेच्छा के अनुसार चलाएँ। सरकार घर के अंदर घुसकर उन्हें एक-दूसरे का क्रीतदास नहीं बनाए रख सकती। क्या हमलोग अपने घरों में तनाव में नहीं रहते? क्या हमलोग नहीं लड़ते-झगड़ते? क्या हम अपने भाई-भतीजों के प्रति उतने ही सहृदय होते हैं, जितने अपने बच्चों के प्रति? तो बुराइयाँ तो घर-घर में रहेंगी ही, चाहे वह घर समाजवादी का हो, चाहे ग़ैर-समाजवादी का। यह तो प्रत्येक नागरिक पर निर्भर करता है कि वह किस हद तक अपना घरेलू जीवन सुखी और सम्पन्न बनाए। इसलिए इस संबंध में जानकारी हासिल भी कर लेता, तो भी बात साफ़ न हो पाती।

अंत में एक बात और कहूँगा, हो सकता है कि मैंने जिन व्यक्तियों और स्थानों के नाम दिए हैं, उनके उच्चारण मैं न समझ सका होऊँ और यहाँ उन्हें ग़लत लिख गया होऊँ। वे और पाठक मुझे क्षमा करेंगे। मैं बाद को पता लगाकर सही कर दूँगा।

*****

स्रोत : पुस्तक : बस्ती खिले गुलाबों की (पृष्ठ 7-46) रचनाकार : केदारनाथ अग्रवाल प्रकाशन : साहित्य भंडार इलाहाबाद संस्करण : 2010